ॐ ॐ ॐकार साधना विज्ञान

परम पूज्य गुरुदेव
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

वंदनीय माता
भगवती देवी शर्मा

१. जो ॐ ॐ ॐकार जपेगा,
वही विजय का वरण करेगा।

२. जो ॐ ॐ ॐकार जपेगा,
उसे मुक्ति का मार्ग मिलेगा।

३. पति पत्नी ॐ ॐ ॐकार जपेंगे,
सुख सुविधा के द्वार खुलेंगे।

४. जो ॐ ॐ ॐकार जपेगा,
वही शिवत्व का वरण करेगा।

५. जो ॐ ॐ ॐकार जपेगा,
रोग निवारण मंत्र पढ़ेगा।

६. जो ॐ ॐ ॐकार जपेगा,
जाति, धर्म का भेद मिटेगा।

७. जो ॐ ॐ ॐकार जपेगा,
नव युग का आधार बनेगा।

भूमिका
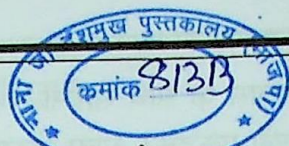
आत्म साधना मानव जीवन का महान पुरुषार्थ माना गया है। मनुष्य अपने भाग्य का निर्माण कर्ता स्वयं है। अध्यात्म साधना उस निर्माण का सर्वोत्तम उपाय है। असम्भव को सम्भव कर दिखाने वाले इस प्रचण्ड पराक्रम का मार्ग अपनाने वाले इतिहास में अमर हो जाते हैं। जो भी साधनामय जीवन जीने का संकल्प लेकर उसे पूर्णता तक पहुँचाते है, उन्हीं का जीवन सार्थक माना जाता है। ऐसे पुरुषार्थी ही अपने भाग्य के निर्माता माने जाते हैं। ऐसे लोग जीवन की अनेकानेक विषम परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बनाने में समर्थ होते हैं। ईश्वरीय शक्तियाँ ऐसे पुरुषार्थियों को सहायता करने को तत्पर रहती हैं। बाहरी अभावों, चुनौतियों के मध्य भी वह एक खिलाड़ी के रूप में आनन्दित रहता है।

आजकल साधना के क्षेत्र में भी भ्रान्तियों की भरमार है। प्रायः लोग इन्हें चमत्कार से जोड़कर देखते हैं अथवा अपनी भौतिक मनोकामनाओं की पूर्ति का माध्यम बनाते हैं। कुछ लोग ईश्वर को खुशकर उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। इन सब में जब असफल हो जाते हैं, तो तंत्र-मंत्र का जादू-टोटके का सहारा लेकर अपना प्रभुत्व दिखाने का प्रयत्न करते हैं। अन्ततोगत्वा ऐसे लोग ईश्वर विरोधी तक बन जाते हैं। सही मार्ग दर्शन के अभाव में बहुत से पूर्व जन्म के सुसंस्कारी साधक भी धूर्त एवं पाखण्डी बाबा जी लोगों के जाल में फंसकर कुण्डलिनी जागरण की टेढ़ी मेढ़ी पगडण्डी पकड़ कर चल पड़ते हैं। असफल होने पर साधना विज्ञान को ही गलत मानने लगते हैं। जबकि अध्यात्म साधनाओं का एक सुनियोजित मार्ग है, विज्ञान सम्मत विधि विधान है। इनमें आगे बढ़ने का क्रमिक सोपान है।

प्रस्तुत पुस्तक में हमने साधना के क्रमिक सोपानों में आगे बढ़ने का विज्ञान सम्मत प्रतिपादन किया है। साधना की सभी विधियों में क्रमिक रूप में बढ़ते रहने पर इसके अप्रत्याशित परिणाम सामने आने लगते हैं। इनमें भटकने के अवसर हैं ही नहीं आवश्यकता मात्र दृढ़ निश्चय एवं

विश्वास के साथ साधना समर में उतरने की है। यह पुस्तक साधक की उँगली पकड़कर आत्म चेतना के परिष्कार एवं उसके चरम विकास तक पहुँचने की सरल सीढ़ी का काम करेगी।

साधनात्मक जीवन की पृष्ट भूमि से प्रारम्भ होने वाली यह साधना यम, नियम, आसन कर दिनभर सजग सक्रिय जीवन जीते हुए रात्रि शयन के पूर्व तत्वबोध की साधना के साथ दैनिक क्रिया कलापों का समापन होता है। साधना में स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों की क्रमिक साधना करते हुए पंचकोशी साधना तथा षट्चक्रवेधन करते हुए कुण्डलिनी साधना में समापन होता है। कुछ क्रियाओं की पुनरावृत्ति हुई है किन्तु वह साधकों की सुविधा को ध्यान में रखकर की गई है जो आवश्यक भी थी।

हमारा पूर्ण विश्वास है कि साधना विज्ञान की यह पुस्तक सामान्य ग्रहस्थ से लेकर साधु सन्यासियों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी।
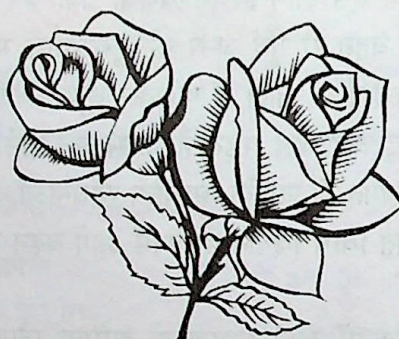
ॐॐ ॐकार साधना विज्ञान
प्रथम चरण

परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य द्वारा अनुभूत एवं वर्णित साधना पद्धति अपने आप में विज्ञान सम्मत समग्र साधना पद्धति है। इसी साधना को महान शिव भक्त रावण ने स्वर्ग की सीढ़ी नाम से प्रतिपादित करने की योजना बनाई थी किन्तु आज नहीं कल कहते हुए वह काल के करालगाल में चला गया। इसी साधना को कुण्डलिनी जागरण साधना के नाम से भी जाना जाता है। इसकी ही संक्षिप्त किन्तु प्रभावकारी साधना इस ॐॐ ॐकार साधना विज्ञान में अंकित की जा रही है। वर्तमान में भी ॐॐ ॐकार के एक महान साधक द्वारा इस साधना विज्ञान को अपने जीवन में उतारने का सफल प्रयोग किया जा चुका है। यह साधना ॐॐ ॐकार साधकों के साथ-साथ अन्यान्य जिज्ञासु साधकों के लिए भी अनुकरणीय है। प्रस्तुत साधना विज्ञान साधकों की सुविधा की दृष्टि से पाँच चरणों में विभक्त किया गया है। यह प्रथम चरण सभी साधकों को अष्टांगयोग की संक्षिप्त जानकारी के रूप में है। इसका अभ्यास सफलता पूर्वक कर लेने पर शेष चार चरणों की साधना यदि क्रमशः पूरा करते हुए आगे बढ़ा जाय तो साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँचा जा सकता है। यदि कोई साधक प्रथम चरण के पश्चात् अन्य किसी चरण को अपनी साधना का अंग बनाना चाहें तो भी उन्हें उसमें सफलता मिलेगी। क्योंकि यहाँ पर प्रथम चरण का अर्थ किसी विद्यालयी शिक्षा की पाठ्य पुस्तक से नहीं है अपितु साधकों की सुविधा की दृष्टि से विभाजन मात्र है। सरल से कठिन की ओर बढ़ने का एक क्रम मात्र है।

निष्ठावान साधक चाहे वह गृहस्थ ही क्यों न हों साधना विज्ञान की इस गुरुत्तर साधना को धैर्य पूवर्क अपने जीवन का अंग बना लेवे तो उनका जीवन सार्थक हो जायेगा। अध्यात्म के क्षेत्र में उनका नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित किया जायेगा। यह साधना परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य एवं परम वन्दनीया भगवती देवी शर्मा के सूक्ष्म संरक्षण एवं अनुभवी ॐॐ ॐकार साधकों के संरक्षण में चलाई जा रही है। अतः साधना से निष्ठावान एवं संकल्पनिष्ठ साधकों को लाभ उठाना चाहिए। यह साधना साधारण गृहस्थ से लेकर विरक्त साधु संन्यासियों के लिए भी महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

पूज्यवर द्वारा अनुभूत यह ॐॐ ॐकार साधना विज्ञान गायत्री परिवार के साधकों के साथ-साथ अन्यान्य साधकों के लिए भी अनुकरणीय है। प्रस्तुत

साधना नवनीत साधकों को आत्मसात् करने तथा उसकी परीक्षा में खरा उतरने वाले साधकों को ही दूसरे चरण की साधना की तत्परता दिखानी चाहिए। बिना प्रथम स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण किए द्वितीय स्तर में अनधिकृत प्रवेश की कोशिश निरर्थक ही सिद्ध होगी। इसी प्रकार दूसरे स्तर की साधना में सफलता पूर्वक उत्तीर्ण होने कके पश्चात् ही तीसरे या चौथे अथवा पांचवे चरण की साधना में प्रवेश करने का प्रयास करना चाहिए। यहाँ पर यह स्पष्ट कर दे कि प्रथम व द्वितीय चरण की साधना संपन्न कर लेने के उपरांत साधक बहुत कुछ जान-समझ लेता है तब तीसरे, चौथे अथवा पांचवे चरण में से किसी भी चरण की कोई साधना पहले शुरू कर सता है। दूसरे चरण के उपरांत चरणों की क्रमिक साधना करना अनिवार्य नहीं है। साधक अपनी सुविधा एवं रूचि के अनुसार किसी भी चरण की साधना के आगे-पीछे कर सकता है।

निष्ठावान् साधकों से आशा की जाती है कि वे ॐॐ ॐकार साधना विज्ञान की इस गुरुतर साधना को क्रमिक रूप से अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न धैर्यपूर्वक करेंगे। यह साधना परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माता जी के सूक्ष्म संरक्षण तथा ऊँचे साधकों को प्रत्यक्ष मार्ग दर्शन में चलाई जा रही है। अत: इस साधना के लिए निष्ठावान साधकों को आगे आना चाहिए। और इस सुयोग का लाभ उठाना चाहिए।

साधना क्रम-

1. बिस्तर से उठते ही बिस्तर में बैठे-बैठे आत्मबोध की साधना करें।
2. प्राणाकर्षण प्राणायाम आत्मबोध की साधना के बाद शौच आदि से निवृत्त होकर बिना स्नान किए भी किया जा सकता है। शौचादि न जाना हो तो उसी हालत में भी बिस्तर पर बैठकर भी किया जा सकता है। स्नान के बाद भी किया जा सकता है।
3. नाड़ी शोधन प्राणायाम स्नानादि से निवृत्त होकर करें। उसके पश्चात्
4. लोम-विलोम सूर्यबेधन प्राणायाम करें। इसके बाद
5. साधना स्थली में पूजा उपचार करके जप व ध्यान का क्रम चलाना चाहिए।
6. मुद्रओं का अभ्यास समय निकालकर कभी भी करते रह सकते हैं। साधनाओं में जब जिस मुद्रा की विशेष आवश्यकता होती है वहाँ उनका वर्णन कर दिया गया है।

आत्मविकास की दो प्रमुख साधनाएँ हैं- प्रथम आत्मबोध की साधना, दूसरी तत्वबोध की साधना। आत्मबोध की साधना प्रात:काल तथा तत्वबोध की साधना सायंकाल बिस्तर पर जाने पर सोने के पूर्व की जाती है।

आत्मबोध की साधना

प्रात:काल बिस्तर से जगते ही सीधे उठकर बैठ जायें, नये दिन को नया जन्म मानकर भगवान को इसके लिए धन्यवाद दें कि उन्होंने आपको दुर्लभ मानव योनि प्रदान की है। अब पूरे दिन की कार्य प्रणाली, समय सारणी निर्धारित समय अनुसार सभी कार्यो को पूरा करने का संकल्प लिया जाय। इस आत्मबोध की साधना में 5-7 मिनट ही लगाये जायें। इसके प्रश्चात् शौच आदि से निवृत्त होकर साधना के अन्य नियमों का पालन किया जाये।

तत्त्वबोध की साधना

(सायंकाल बिस्तर पर लेटने के बाद तत्त्वबोध की साधना करें।)

रात सोते समय बिस्तर पर लेटकर मानसिक रूप से उन संकल्पों का स्मरण किया जाय, जिनको प्रात:काल आत्मबोध की साधना में किया गया था। उनमें से जितने संकल्प पूरे हो सके हों, इतने के लिए तो भगवान् को धन्यवाद देवें कि आपकी कृपा से हमारे आज के संकल्प पूरे हुए। यदि कुछ छूट गये हो तो उसके लिए भगवान् से क्षमा माँगे अगले दिन ऐसी गलती न करने की प्रतिज्ञा करें। यदि कोई अनुचित कार्य हो गया हो, तो उनके लिए प्रायश्चित करें-खेद व्यक्त करें। तत्पश्चात् अपने को निद्रा रूपी मृत्यु की गोदी में पड़ा अनुभव करें। भावना-कल्पना को और प्रबल-प्रगाढ़ बनाते हुए महसूस किया जाए कि अपने सगे-संबंधी भी मरणोतर संस्कार पूरे करने के पश्चात् धीरे-धीरे भूलते जा रहे हैं। साधना थोड़ी देर जारी रखने पर नींद आ जाएगी।

यह साधना प्रतिदिन करते रहने से माया-मोह के बंधन शिथिल होने लगते हैं और राजा जनक की तरह विदेह जैसी उच्च आध्यात्मिक अवस्था से प्राप्त की जा सकती है। ॐॐॐकार साधना विज्ञान की उच्चस्तरीय साधना की यह प्रारंभिक साधना है। इसका अभ्यास अपने भावी जीवन में उतारते चलें।

अष्टाङ्ग योग- संक्षिप्त परिचय

महर्षि पतंजलि ने अष्टांग योग के अन्तर्गत योग के आठ अंग-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि की चर्चा की है। इनमें यम-नियम तथा प्रत्याहार को योग का मूलाधार माना जा सकता है। इन तीनों

के सध जाने पर साधना की सफलता सुनिश्चित मान लेनी चाहिए। **महात्मा गांधी जी** ने तो मात्र इन तीनों के बल पर ही इतनी आत्मशक्ति प्राप्त कर ली थी कि अपने समय की अजेय शक्ति ब्रिटिश शासन को भारत से उखाड़ फेंका था। यम-नियम के सम्बन्ध में **परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी** ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं- 'हमारा निज का अनुभव है कि यम-नियमों की साधना से आत्मा का सच्चा विकास होता है और उसके कारण जीवन सब प्रकार सुख-शांति से परिपूर्ण हो जाता है।

यम :- योगदर्शन में **अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः** अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाँच व्रतों को यम कहा गया है।

अहिंसा :- हिंसा का अभिप्राय किसी जीव की हत्या ही नहीं है, अपितु प्राणि मात्र को मन, वाणी या कर्म से कष्ट पहुँचाने को भी हिंसा ही माना गया है। महात्मा गाँधी ने तो कुविचारों को भी हिंसा ही माना है। कुछ परम्परावादी **वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति** की दुहाई देकर अपने स्वार्थवश हिंसा कर डालते हैं और दोष वैदिक परम्परा के मत्थे मढ़ देते हैं। इस प्रकार मान्यताएँ साधकों को भ्रमित करतीं व उनकी प्रगति में व्यवधान बनती हैं। जबकि अपराधी को क्षमा करना, दुष्टता को सहन करना यह भी एक प्रकार की ही हिंसा ही है। अभिप्राय यह कि अध्यात्म मार्ग के पथिक को अहिंसाव्रत का विवेकपूर्ण ढंग से पालन करने का यथासंभव प्रयास करना चाहिए।

सत्य :- किसी भी बात या घटना को ज्यों का त्यों कहना सत्य माना जाता है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इसे उचित नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में नीति ग्रंथों ने **'सत्यं ब्रूयात्, प्रियम् ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यं अप्रियम्'** की बात कही है। अर्थात् सत्य तो बोला जाय, किन्तु वह अप्रिय या कटु न हो, जिससे कि सुनने वाले का दिल दुखे, यदि थोड़े से असत्य से किसी का उपकार होता हे, किसी की प्राण रक्षा होती हे, तो उसे सत्य के ही समान उचित मानना चाहिए। सारांशतः पवित्र उद्देश्य के लिए, परोपकार के लिए निःस्वार्थ भाव से बोला हुआ असत्य भी सत्य ही है और बुरी नियत से स्वार्थवश या किसी को क्षति पहुँचाने की दृष्टि से बोला गया सत्य भी असत्य ही कहा जाएगा।

विशेष ध्यान देने की बात यह है कि सत्य बोलना तो सरल है, किन्तु सत्यपरायण होना कठिन है, क्योंकि सत्यपरायण होने का अभिप्राय सत्य के लिए प्राण देकर भी उस पर आरूढ़ रहना, दृढ़ रहना होता है। योग के साधक

को निर्भीकता पूर्वक साहस और ईमानदारी के साथ सत्य परायण होना पड़ता है।

अस्तेयः- अस्तेय का सीधा अर्थ चोरी न करना है। पराई वस्तु को बिना उसके मालिक की आज्ञा के लेना भी चोरी कहा जाता है। किसी पर दबाव डालकर उसकी वस्तु को प्राप्त करना किसी की अमानत में रखी वस्तु को हड़प जाना भी चोरी ही है। काम में आलस्य-प्रमाद करना भी चोरी ही है। आजकल कार्यालयों में कर्त्तव्य के बदले अपना हक माँगने की परम्परा चल पड़ी है। यह घूसखोरी भी चोरी में ही शुमार किया जायेगा। साधक को स्वयं चोरी से बचना तो आवश्यक है ही, दूसरों को भी इससे यथासंभव बचाना चाहिए।

ब्रह्मचर्यः- आम तौर से ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में वीर्यपात न होने की अधूरी मान्यता ही प्रचलित है। जबकि ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ ब्रह्म में, परमात्मा में आचरण करना अर्थात् ब्रह्म-परायण जीवन जीना, सत्याचरण पर दृढ़ता पूर्वक आरूढ़ होना है। केवल जननेन्द्रिय के संबंध में ब्रह्मचर्य का मानना शेष जिह्वा, नेत्र, कान आदि इन्द्रियों से मनमाना आचरण करना ब्रह्मचर्य कदापि नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस एकांगी प्रयत्न से ब्रह्मचर्य व्रत विडम्बना मात्र बनकर रह जाता है। इसके लिए अस्वाद व्रत सबसे कारण उपाय है। इस संबंध में पूज्य गुरुदेव प० श्रीराम शर्मा आचार्य का अनुभवगत कथन यह है कि 'यदि अस्वाद व्रत का भलीभाँति पालन किया जाय, तो जनेन्द्रिय संयम बिल्कुल आसान हो जाता है।

इस संबंध में हमें **स्वामी रामकृष्ण परमहंस** का यह कथन याद रखना चाहिए कि अपना मानसिक चिन्तन पवित्र हो, तो स्वप्न दोष से साधना में कोई व्यवधान नहीं आता और यदि मानसिक चिन्तन विकृत हो, तो बिना धातु क्षरण के भी साधना में प्रगति नहीं हो सकती।

हमारा मिशन सद्गृहस्थों का मिशन है। अपने ॐॐ ॐकार साधकों के लिए परम पूज्य आचार्य जी ने ऋषि परम्परा का अनुसरण करते हुए आदर्श गृहस्थ एक नारी-ब्रह्मचारी को उपयुक्त माना है। इसमें किसी के लिए अनुष्ठान काल को छोड़कर शेष जीवन में पूर्ण ब्रह्मचर्य की बाध्यता नहीं है। गृहस्थ रहकर जितना संभव हो ब्रह्मचर्य का निर्वाह करते हुए साधना की जानी चाहिए। इससे पारिवारिक एवं सामाजिक सामंजस्य भी बना रहता है। लेकिन सप्ताह में **गुरुवार और रविवार के दिन अस्वाद व्रत तथा ब्रह्मचर्य का पालन,** तो अवश्य ही करना चाहिए।

अपरिग्रहः- आवश्यकता से अधिक संग्रह करना परिग्रह कहलाता है। अध्यात्म मार्ग के पथिक के लिए परिग्रह को एक प्रकार का पाप माना गया है। इससे ईर्ष्या, चोरी, कलह, संघर्ष आदि की उत्पत्ति होती हे। इससे समाज में भ्रष्टाचार और शोषण को बढ़ावा मिलता है। इसलिए अध्यात्म मार्ग पर चलने वालों के लिए सादगी पूर्ण अपरिग्रही जीवन जीने की आवश्यकता रहती है। **ईसामसीह** ने तो अपरिग्रह के सम्बन्ध में कहा था 'सुई की नोक से ऊँट तो निकल सकता है, किन्तु कोई पूँजीपति स्वर्ग में नहीं पहुंच सकता'। **कबीरदास** जी का भी इसी प्रकार मानना है- **'साँई इतना दीजिए, जामै कुटुम्ब समाय। मैं भी भूखा ना रहूँ अतिथि न भूखा जाय। महात्मा गाँधी** ने तो अपरिग्रह के अंतर्गत अनर्गल अवांछित विचारों को मन में स्थान देने से भी मना किया है। इस प्रकार यदि अपरिग्रह का सही पालन किया जाय, तो साधना में आशातीत सफलता मिलती चली जायेगी।

नियमः- यम के समान नियम को भी महर्षि पतंजलि ने पाँच वर्गो में विभक्त किया है। यह है- शोच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान।

शौचः- कुछ लोग शौच का अर्थ मात्र शारीरिक सफाई-शुद्धता से लेते हैं। यह शौच की एकांगी व्याख्या है। ऋषियों ने शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार की पवित्रका को शौच के अन्तर्गत माना है। योग साधकों को सर्वप्रथम शारीरिक स्वच्छता-सफाई पर ध्यान देना चाहिए। शारीरिक शौच के अन्तर्गत मल निष्काशन के साथ-साथ स्नान के समय शरीर के खुरदुरे वस्त्र, तौलिया से खूब रगड़ना चाहिए। नाखून, कान, आँख, नाक, बाल आदि सभी अंगों की नित्य प्रति उचित रीति से साफ-सफाई होती रहनी चाहिए। इसके बाद अपने निवास, कार्यालय, पूजाघर की साफ सफाई पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। मानसिक शौच के लिए निष्कपट व्यवहार, इन्द्रिय निग्रह, दया, परोपकार, त्याग, करूणा, सहानुभूति, दान, सहायता, सद्भावना, क्षमा प्रसन्नता, सत्य निष्ठा, निःस्वार्थता इत्यादि सद्गुणों का संग्रह बढ़ाते रहने से मानसिक पवित्रता बढ़ती चली जाती है।

सन्तोषः- सन्तोष का वास्तविक अर्थ- प्रसन्नता, खुशी, आनन्द जैसे आध्यात्मिक गुणों से है। जैसी भी भली-बुरी परिस्थिति आए, उसका बहादुरी से सामना करते हुए प्रसन्नता का अनुभ्व करता है, जिसकी नसों में विद्युत् का सा उत्साह चमकता रहता है, सही अर्थो में वही संतोषी कहा जायेगा। जो भी उपलब्धि

ईमानदारी एवं परिश्रम की कमाई से प्राप्त हो, उसमें प्रसन्नता का अनुभव करना ही वास्तविक सन्तोष है।

सामाजिक जीवन में जो जीवन-संगिनी बन गयी है, वह चाहे जैसी भी हो, उसे ही ईश्वर की सुन्दरतम देन समझकर उसके साथ बराबर प्रेम स्नेह बनाकर चलना ही सन्तोष है। कर्त्तव्य के समय आलसी-प्रमादी बनकर सन्तोष किए बैठे रहना सन्तोष नहीं, यह तो मजबूरी वश गले पड़ा दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। सही अर्थो में सन्तोषी व्यक्ति के मन में हमेशा प्रसन्नता की अनुभूति बनी रहती है, जिससे उसका जीवन आनन्दमय बना रहता है।

तप:- तपश्चर्या का अभिप्राय किसी श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए कष्ट सहन करना है। दूसरे शब्दों में इसे आत्म कल्याण एवं लोक कल्याण के लिए कष्ट सहन करना भी कह सकते हैं। यह तप दो प्रकार का होता है- पहला शारीरिक तप तथा दूसरा मानसिक तप।

शारीरिक तप, जिसे तितीक्षा कहा जाता है; जैसे सर्दी-गर्मी सहना, नंगे पैर चलना, कम से कम वस्त्रों से अथवा नंगे बदन रहकर जीवनयापन करना। अपने कार्य स्वयं करना, दूसरों की सहायता न लेना, जैसे:- अपने कपड़े स्वयं धोना, अपना खाना स्वयं पकाना, अपनी साफ-सफाई स्वयं करना। मानवीय तप का दूसरा पक्ष जो सबसे महत्त्वपूर्ण है, वह है- मानसिक तप, जिसमें इन्द्रिय निग्रह को प्रमुखता दी गयी है। इन्द्रिय निग्रह रूपी तप में यदि स्वादेन्द्रिय और जननेन्द्रिय को नियंत्रित कर लिया जाय, तो साधना मार्ग अति सरल हो जाता है। पं० श्री राम शर्मा आचार्य ने चार संयमों में इन्द्रिय संयम के अतिरिक्त तीन और संयमों को भी साधना के लिए उपयोगी माना है। वह है- अर्थ संयम अर्थात् फिजूल खर्ची तथा आय से अधिक खर्च पर रोक लगाना। समय संयम का अभिप्राय समय का मूल्य समझा जाय और उसका सुनियोजन कर उसका पूरा सदुपयोग किया जाय। विचार-संयम करने से साधना से प्राप्त ऊर्जा का क्षरण रुकता है। इसके लिए अपने चिन्तन को रचनात्मक मार्ग में लगाया जाये। अनावश्यक बकवास या भाषणबाजी से बचें। कामुक, चिन्तन, कामुक दृष्टि और कामुक चित्रों के देखने, लड़कियों के रूप सौंदर्य को देखने इत्यादि से बचा जाय। इससे साधना में परिपक्वता आती है।

ॐॐॐकार साधकों के लिए प्रारंभिक रूप से गुरुवार तथा रविवार को अस्वाद व्रत का विधान बताया जाता है। इससे ज्यादा जो लोग कई वर्षों तक

अस्वाद व्रत चलाते रहते हैं, उन्हें इससे लाभ भी अपेक्षाकृत अधिक मिलता है; क्योंकि जिह्वा का चटोरापन खत्म होने से वासनात्मक भूख भी कम होती जाती है, मन की भटकन भी कम हो जाती है।

स्वाध्याय :- स्वाध्याय का अर्थ सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना तथा अपने बारे में जानना है। स्वाध्याय आत्मोन्नति तथा आत्सुधार के आकांक्षी-पुरुषार्थी को ऊँचा उठाने का सरल राजमार्ग है। इसके लिए सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सद्गुरु का सत्संग, आप्तवचनों पर श्रद्धा रखना इत्यादि को अनिवार्य माना गया है। गुरु व ईश्वर के प्रति श्रद्धा-संवर्धन वाला सत्साहित्य ही पढ़ा जाय, उसी का चिंतन-मनन किया जाय। अखण्ड ज्योति संस्थान द्वारा प्रकाशित परम पूज्य आचार्य जी का युग साहित्य तथा साधना संबंधी पुस्ताकों का स्वाध्याय साधना की मनोभूमि बनाने में विशेष मद्दगार सिद्ध हो सकता है।

ईश्वरप्रणिधानः- ईश्वर प्रणिधान-ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पित होना है। ईश्वर को अपने हृदय में स्थित मानकर, चौबीसों घण्टे का उसे साथी सहयोगी मानकर प्रत्येक कार्य उसे अर्पित करने के भाव से करना ही ईश्वर प्रणिधान है। साधना मार्ग के पथिक को ईश्वर के बाह्य पूजा-उपचार की अपेक्षा उसे अन्तःकरण में सदैव विद्यमान मानकर प्रत्येक कार्य करना चाहिए, तभी साधना में सफलता की सुनिश्चितता बनती है। इस प्रकार ईश्वर के प्रति पूर्ण आस्था रखते हुए, उनकी भक्ति से सराबोर ह्यदय से उनकी बनाई दुनिया में अपने को उन्हीं का सेवक मानकर यथायोग व्यवहार करना, ईश्वर-प्रणिधान का निहितार्थ है।

मुद्रा

मुद्रा- भारतीय योग ग्रंथों में विभिन्न मुद्राओं का वर्णन है। इन सबका अभ्यास करना अब काल क्रमानुसार उपयुक्त नहीं रह गया है। अस्तु, पूज्य गुरुदेव ने अपने ॐॐ ॐकार साधक संघ के साधकों के लिए मुख्य रूप से तीन मुद्राओं को ही प्रमुखता दी है इनमें से प्रथम शिथिलीकरण मुद्रा, जिससे धारणा, ध्यान में मदद मिलती है तथा मन को विचारशून्यता की स्थिति में ले आती है।

शिथिलीकरण मुद्रा- इसका वर्णन प्रथम में आ चुका है, किन्तु यहाँ पर देना इसलिए आवश्यक समझा गया है कि इस स्टेज पर आते-आते ध्यान का समय बढ़ने लगता है। ध्यान का समय बढ़ने के साथ-साथ उस एकाग्रता से साधक का सिर दर्द भी होने लगता है। अतः साधक को चाहिए कि ध्यान से उठकर बिना किसी से वार्ता किए चुप-चाप 10-15 मिनट तक निश्चेष्ट रूप से बिस्तर

पर या अन्य सुविधाजनक स्थान पर लेटकर शरीर को शिथिल कर दे। इससे ध्यान से प्राप्त ऊष्मा धीरे-धीरे शांत होकर पूरे शरीर में व्याप्त हो जाती है और सिर का भारीपन भी दूर हो जाता है। 10-15 मिनट के शिथिलीकरण से ही बिखराव रूख जाता है। इसका अभ्यास करने के लिए प्रातः सायं या जब भी समय मिले, तख्त या जमीन पर कुछ बिछावन डालकर हाथ-पैर फैलाकर लेट जाएँ। पूरा शरीर ढीला छोड़ दें। अब भावना करें कि हमारे पैर के अंगूँठे, अँगुलियाँ, पंजे सभी शून्य हो गये हैं। सभी निष्प्राण हो गए हैं। धीरे-धीरे ध्यान ऊपर की तरफ लेते आएँ, क्रमशः ध्यान करें कि पिण्डली शून्य, घुटन शून्य, जाँघे शून्य, कमर शून्य दोनों पैर शून्य, कमर शून्य, फिर ऊपर ध्यान लाएँ। पेट शून्य, धड़ शून्य, दोनों हाथ-पैर, पूरा धड़ शून्य। फिर ऊपर चढ़ें-गर्दन शून्य, आँख-कान, नाक शून्य, सिर शून्य, मस्तिष्क शून्य, पूरा शरीर शून्य। इसी भावना को प्रगाढ़ करते रहें मन से शरीर को मृतक मानकर बाहर से उसे शव के समान देखें। ध्यान रहे शरीर को बिल्कुल ही ढीला पड़ा रहने देंवे। इसी को श्वासन भी कहा जाता है। ध्यान के समय जब शरीर बिल्कुल ढीला होने लगता हे, तब ध्यान में प्रगाढ़ता आने लगती है। कभी-कभी शरीर का कोई एक या दो अंग बिल्कुल ही शून्य होने लगते हैं। यह सब ध्यान के लक्षण हैं। साधक को ध्यान के समय हाथ या पैरों के शून्य (निश्चेष्ट) होने पर घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि पूर्ण चेतना आने पर पुनः सभी अंग सक्रिय हो जाते हैं। शरीर का शिथिलीकरण करने में जितनी सफलता मिलती जायेगी, ध्यान तथा योग निद्रा में उतनी ही प्रगति होती चली जायेगी।

शक्तिचालिनी मुद्रा- प्रारंभिक अष्टांग योग की साधना से ही साधक को शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास हो गया होगा। उसे प्राणायाम के साथ जोड़कर करने से ज्यादा लाभ होता है। फिर भी जो साधक प्राणायाम के समय मूल बंध ठीक से न लगा सकते हों उन्हें शाम-सुबह 15-20 मिनट का समय इस शक्तिचालिनी मुद्रा के लिए भी निकालना चाहिए **स्त्रियों के लिए मूलाधार चक्र के जागरण में इस मुद्रा का अभ्यास करना वर्जित किया जाता है** क्योंकि इससे युवा महिलाओं में अनावश्यक आवेग पैदा होता है। हाँ प्राणायाम करते समय महिलायें भी मूलबंध, उड्यन बंध तथा जालंधर बंध एक साथ लगा सकती हैं। इसकी उपयोगिता मूलाधार चक्र के जागरण तथा अपानवायु को ऊर्ध्वागामी बनाने में है। कुण्डलिनी योग में यह प्रमुख भूमिका निभाती है। इसके

लिए साधक को चाहिए कि वह सीधे बैठकर गुदा को ऊपर की ओर खींचने, रोकने और ढीला छोड़कर पुन: ऊपर खींचा जाय, इस प्रकार ऊपर की ओर गुदा खींचने, रोकने और ढीला करने का अभ्यास नित्य करना चाहिए। जैसे पशु गोबर त्याग के बाद आकुंचन करते हैं दिन में जब भी आप कमर सीधी करके बैठें गुदा का ऊपर चढ़ाते-छोड़ते रह सकते हैं। धीरे-धीरे गुदा की जगह मूलाधार को ऊपर की ओर उठना शुरू हो जाता है। इसे और जल्दी सक्रिय करने के लिए प्राणायाम करते सम पैर की एक एड़ी मल-मूत्र छिद्रों के मध्य (सीवन) में लगाकर बैठने से भी मूलाधार चक्र के जागरण में विशेष लाभ होता है।

नोट- महिलाओं के लिए शक्तिचालिनी मुद्रा का अभ्यास करना पूर्ण रूपेण वर्जित है, यदि कोई साधक या संत महात्मा इस मुद्रा को महिलाओं को करने की सलाह दें, तो उसकी भी अनसुनी कर देनी चाहिए। और यह मान लेनी चाहिए कि इसने स्वयं साधना नहीं की है। केवल पुस्तकें पढ़कर बता रहा है।

खेचरी मुद्रा - खेचरी मुद्रा, एक प्रमुख मुद्रा है। उपरोक्त जप व ध्यान करने के बाद खेचरी मुद्रा को न्यूनतम 15 मिनट तक लगाएँ। अधिक करें, तो अधिक ही लाभ होगा। सोऽहं जप से प्रारंभ कर खेचरी मुद्रा तक की साधना नियमित रूप से सफलतापूर्वक करते रहने से यथाशीघ्र कुण्डलिनी जागरण होने लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं। यह मुद्रा साधना के समापन के समय ही लगाने का विधान है। इसके लिए जिह्वा को उलट कर पीछे की तरफ ले जाया जाता है और तालु के पीछे लटकते हुए कौवे को स्पर्श करायाजाता है। अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते काक के पीछे कंठ गह्वर में प्रवेश कराया जाता है। जो साधक इस गह्वर में जिह्वा को प्रवेश कराने में सफल हो जाता है, उसकी खेचरी मुद्रा सिद्ध मानी जाती है। प्राचीनकाल में इसके लिए जिह्वा को लम्बा करने के लिए शहद, काली मिर्च आदि को लगाकर जिह्वा का दोहन किया जाता था। खेचरी सिद्ध होने पर ध्यानावस्था में जब जिह्वा को गहर में डाला जाता है, तो जो आन्दानुभूति होती है, इसके सामने सांसारिक काम सुख नगण्य हो जाता है। चूँकि प्रारंभ से ही किसी भी साधक को सफलता नहीं मिल जाती। अस्तु परम पूज्य गुरुदेव के अनुसार इसके अभ्यास हेतु जिह्वा को पीछे की ओर जहाँ तक आसानी से पहुँच सके, पहुँचाएँ और वहीं पर तालु से स्पर्श कराकर उससे सहस्रार से झरने वाले अमृत का पान करने का भाव करते हुए रसास्वादन करना चाहिए।

दिनचर्या- चक्र जागरण साधकों को अपनी दिनचर्या पूर्णत: नियमित रखनी

चाहिए। प्रातःकाल सोकर उठने से लेकर शाम को बिस्तर में सोने जाने तक के सभी क्रियाकलाप पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार ही दृढ़तापूर्वक पालन करते रहना चाहिए। प्रातःकाल ऊषापान (जल पीना), जल केवल उतना ही पिया जाय, जिससे कि प्राणायाम के समय पेट फूला न रहे। आवश्यकता हो, तो बाद में जल पिया जा सकता है। सायंकालीन भोजन सोने में दो-तीन घंटे पूर्व कर लेना तथा अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य नियमों का परिपालन करना साधना में सहायक होता है। दिनभर के अपने क्रियाकलाप की बारीकी से जाँच करते रहना चाहिए। कुसंगति एवं कुविचारों के अवसर से अपने को बचाए रहें। ऐसी सभा-सोसायटियों से परहेज करना चाहिए, जिनके कारण अपना चिन्तन प्रभावित होता हो। इसके लिए स्वाध्याय हेतु अच्छी पुस्तकों के चयन तथा सत्संग की व्यवस्था बनाए रखना चाहिए। निर्धारित दिनचर्या का दृढ़तापूर्वक पालन करते रहने से कुछ दिनों में वैसी ही आदत पड़ जाती है और बिना किसी कष्ट कठिनाई का अनुभव किए सभी कार्य सरलता से होते चले जाते हैं।

इन्द्रिय निग्रह- उच्च स्तरीय साधना में आगे बढ़ने के लिए अपनी दसों इन्द्रियों में से ज्ञानेन्द्रियों में से किसी एक पर पूर्ण नियंत्रण लाना पड़ता है। यह पाँच हैं- कान, नाक आँख त्वचा और जिह्वा। इनके अंतर्गत जिह्वा जब वाणी का काम करती है तब उसे कर्मेन्द्रिय माना जात है और जब वह रसास्वादन कर रही होती है, तो उसे ज्ञानेन्द्रिय के अंतर्गत माना जाता है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों में जननेन्द्रिय से जब पेशाब नली के रूप में काम लिया जाता है, तो कर्मेन्द्रिय होती है। और जब नारी से सम्पर्क बनाया जाता है तब उससे मिलने वाली रसानुभूति के कारण उस ज्ञानेन्द्रिय भी कहा जाता सकता है। साधनाकाल में इन दिनों द्विकर्मी इन्द्रियों में से एक पर पूर्ण नियंत्रण करना पड़ता है।

साधना में सफलता के आधार स्तम्भ

श्रद्धाः- श्रद्धा ही वह मूल तत्व है जिसके बलपर साधक साधना के शिखर तक पहुँच पाता है। साधक गुरु को भगवान के रूप में अपनी श्रद्धा से प्रतिष्ठित करता है और शिष्य की श्रद्धा के वशीभूत हो गुरु उसे अपनी तपश्चर्या की महत्वपूर्ण शक्ति हस्तान्तरित कर देता है। अध्यात्म क्षेत्र में श्रद्धा के अभाव में एक कदम भी आगे बढ़पाना संभव नहीं। सन्त तुलसीदास ने रामचरित मानस में ''भवानी, शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ, याभ्यां बिना न पश्चयन्ति सिद्धः स्वान्तस्यमीश्वरं।'' अर्थात् श्रद्धा और विश्वास के अभाव में भक्त ईश्वर को अपने

अन्तःकरण में नहीं देख सकता। या सिद्धियों के दर्शन नहीं कर सकता। आज तर्कवाद का जमांना है। श्रद्धा-विश्वास को अंध श्रद्धा व अंधविश्वास कह कर उसका उपहास किया जाता है। यह तर्क भौतिक जीवन में तो उपयुक्त है क्योंकि जहां पर पग-पग में धोखाधड़ी, स्वार्थपरता, विश्वासघात का बोल बाला है, वहाँ पर बिना तर्क-विचार के, उपयुक्त-अनुपयुक्त का विचार, किए बिना जब एक ठग को भी अपनी श्रद्धा अर्पित कर दी जाती है तो वहाँ धोखा ही धोखा है।

अध्यात्म क्षेत्र में आज कल हजारों लाखों की संख्या में धूर्त, ढेरों सन्त-महात्मा का बाना पहने समाज का शोषण कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में उनसे सतर्क रहने की विशेष आवश्यकता है। इसीलिए कहा गया है गुरु बनाये जान के पानी पिये छान के। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों को दिन-रात परीक्षा देने को तत्पर रहा करते थे। परन्तु ठाकुर रामकृष्ण परमहंस अपने शिष्यों की प्रत्येक परीक्षा में सफल होते रहे। तभी वे लोग उनके शरीर त्याग के बाद भी उनके बताए मार्ग में चलकर विश्व विख्यात हुए। श्रद्धा गुरु के सिद्धान्तों और आदर्शो के प्रति होनी चाहिए न कि उनके स्थूल शरीर के प्रति। उनके बातए गए मार्ग में सफलता मिलने पर उनके शरीर के प्रति भी श्रद्धा बढ़ जाना स्वाभाविक है किन्तु लक्ष्य सद्‌गुणों, सद्‌विचारों और ऊँचे उद्‌देश्यों को अपने जीवन में उतारना होना चाहिए।

श्रद्धा के वशीभूत होकर ही श्रवणकुमार ने कन्धे में बैठाकर अपने अँधे माता-पिता को तीर्थाटन कराया था। श्रद्धा के कारण ही लाखों करोड़ों लोग तीर्थो के दर्शन करने जाते हैं, करोड़ों की संख्यां में लोग गंगा व अन्य पवित्र नदियों में स्नान करते हैं। अपनी-अपनी श्रद्ध के अनुरूप उन्हें फल की प्राप्ति भी होती है। साधना क्षेत्र में गुरु के प्रति, इष्ट के प्रति असीम श्रद्धा आरोपित कर साधना करने में ही सफलता मिलती है।

इस सम्बन्ध में एक घटना यह कि एक शिष्य साल में एक बार अपने गुरु के पास जाते समय उनके चरण धोकर एक बोतल में रख लेता था। अपने आश्रम पहुँचकर रोजाना एक बाल्टी पानी से अपनी गुरु के चरणोदक का दो बूँद डालकर लोगों के प्रत्येक मर्ज पर उसी बाल्टी से एक-एक चम्मच जल पिला देता और रोगी ठीक होकर इसकी प्रशंसा करते हुए चला जाता। यह बात उस शिष्य के गुरु ने सुनी तो दूसरे साल जब शिष्य अपने गुरु के पास गया तो उसके गुरु ने उसके बिदा होते समय कहा कि तुमने अभी तक दक्षिणा नहीं

चुकाया अत: उसे आज चुका जाओं। शिष्य ने गुरु की बात शिरोधार्य कर दक्षिणा मांगने को कहा।

गुरु ने कहा कि तुम वह औषधि मुझे बता दो जो तुम सभी मर्ज के लोगों को एक ही दवा से ठीक कर देते हो यही मेरी दक्षिणा है।

शिष्य ने गुरु को बताया कि "मैं तो आपके चरणोदक का ही एक बूँद एक बाल्टी पानी में डालकर उसी से दिन भर एक-एक चम्मच जल मरीजों को देता रहता हूँ। उसी से सभी स्वस्थ हो जाते है। "इतना सुनते ही गुरु ने चारों तरफ घोषणा करवा दिया कि सभी रोगों के मरीज आएँ और उसका चरणोदक पीकर स्वस्थ हो जायें।" ढेरों संख्या में मरीज आकर स्वामी जी के चरणों का धोया जल पीने लगे, किन्तु किसी भी मरीज को लाभ न हुआ। परिणाम स्वरूप मरीजों का क्रोध उबल पड़ा और स्वामी जी की धुनाई कर डाली दु:खी स्वामी जी ने अपने शिष्य को बुलवाया और उलाहना देते हुए बोले की तुमने मुझे गलत बताया। शिष्य ने सनम्र निवेदन करते हुए बताया कि "मेरे द्वारा जो आपको चरणोदक मिश्रित जल दिया जाता है, उसमें मेरा अटूट विश्वास मिला रहता है जबकि आपके द्वारा दिए गए चरणोदक में उस दृढ़ विश्वास का अभाव रहता है।" बात सुनकर गुरु महाराज अवाक् रहे गए।

विश्वास:- विश्वास की तुलना सन्तशिरोमणि तुलसीदास ने भगवान शंकर से किया है। अपनी विवेक बुद्धि से गुरु को अच्छी तरह जान पहचान लेने के उपरान्त उसके सिद्धान्तों, आदर्शों को जीवन में उतारने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाना विश्वास की श्रेणी में आता है। एक बार अटूट विश्वास पैदा हो जाने पर गुरु के प्रति समर्पण करना सरल हो जाता है। बन्दर के बच्चे को दृढ़ विश्वास होता है कि उसकी माँ उछलते कूदते, पेड़ों पर चढ़ते-उतरते समय स्वयं न तो गिरेगी, न ही उसे गिराएगी। इसी आस्था पर वह अपनी माँ को मजबूती के साथ पकड़े रहता है। यदि कभी बच्चे की पकड़ ढीली हो जाती है तो मादा बन्दर उसे एक हाथ से पकड़े हुए भी चलती-दौड़ती रहती है। इसी प्रकार बिल्ली के बच्चे को दृढ़ विश्वास रहता है कि उसकी माँ उसका पूरा ध्यान रखेगी। अत: भूख लगने पर अपने ही स्थान पर बैठे-बैठे माँ को पुकारता रहता है। उसके अन्त:करण की आवाज दूर गई हुई बिल्ली को सुनाई पड़ जाती है और वह दौड़ कर बच्चे की आवश्यकता पूरी करती है। सरकस में विश्वास के आधार पर ही एक कलाकार दूसरे कलाकार के कन्धे पर चढ़कर निर्भय होकर कर्तब दिखाता

है। उसे यह डर नहीं रहता कि रस्सी पर चलने वाला कलाकार उसे गिरा देगा। यह उसका दृढ़ विश्वास ही है। इसी प्रकार गुरु पर दृढ़ विश्वास रखने वाले लाटू से लेकर विवेकानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस के अन्य सभी सन्यासी शिष्य क्या से क्या हो गए? हनुमान जी ने रामनाम के विश्वास पर ही समुद्र लांघा, लंका दहन किया, पहाड़ उखाड़ा यह कमाल हनुमान जी के बाहुबल का नहीं अपितु भगवान राम के नाम पर विश्वास का ही था।

दूसरी तरफ आजकल के अविश्वासी लोग आज एक गुरु करते हैं कल दूसरा, परसों तीसरा इस प्रकार अपनी छोटी-मोटी भौतिक मांगों के पूरी न होने पर घबड़ाकर शिष्य गुरु पर ही अविश्वास कर बैठते हैं और अन्त में किसी धूर्त चमत्कारी बाबा के चक्कर में पड़कर अपना, अपने परिवार एवं अपने धन को बर्बाद करते देखे जाते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि एक आदर्श गुरु आपके आत्म कल्याण पर ही पूरा ध्यान देता है। आप की कमियों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। गुरु को एक कुम्हार के रूप में कहा गया है, 'शिष्य कुम्भ, गुरु कुम्भकार है, गहि-गहि काढ़ै खोट भीतर हाथ सहाय दइ गहि-गहि मारे चोट' इस प्रकार गुरु शिष्य की कमियों को ढूँढता और दूर करता है। यदि साधक इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया तो महर्षि दयानन्द ऐसा योगी, एकलव्य ऐसा निशानेबाज हनुमान जी ऐसा महान योधा व भक्त बन सकता है।

काठिया बाबा के गुरु ने उनके विश्वास की परीक्षा लेने के लिए एक बार 50 मीटर का घेरा खींच कर उसी के अन्दर तब तक रहने का निर्देश दिया कि "जब तक वह वापस न लौटें, तब तक वह उस घेरे से बाहर न निकलें।" कठिया बाबा उसी घेरे के अंदर 15 दिनों तक पड़े रहे वापस आने पर गुरुदेव ने पूछा कि कितनी बार घेरे से बाहर गये हो, कठिया बाबा ने उत्तर दिया कि एक बार भी बाहर नहीं निकला गुरु ने पूछा कि टट्टी, पेशाब के लिए कहाँ जाते थे काठिया बाबा ने उत्तर दिया कि टट्टी पेशाब लगी ही नहीं। फिर पूछा कि खाना कहाँ खाते थे काठिया बाबा ने बताया कि कोई राहगीर जब कभी दे जाता तभी कुछ पा लेता था। अन्यथा उस दिन उपवास की करता और आपका नाम तथा आपका दिया मंत्र जप करता रहता था। काठिया बाबा गुरु द्वारा ली गई कठोर परीक्षा में सफल हुए और उनके गुरु ने बहुत सारे आशीर्वाद दिए जिसके बल पर काठिया बाबा आगे चलकर एक महान सन्त सिद्ध हुए।

ॐॐॐकार साधना के प्रत्येक साधक को परम पूज्य गुरुदेव पं०

श्रीराम शर्मा आचार्य एवं प्रातः स्मणीया माता भगवती देवी शर्मा पर अटूट श्रद्धा व विश्वास रखना चाहिए। सूक्ष्म शरीर में रहकर वह आज भी जिज्ञासु साधकों का मार्गदर्शन करते और उन्हें अध्यात्म के शिखर पर पहुँचा रहे हैं। आवश्यकता उनका मार्गदर्शन पाने की पात्रता विकसित करने की हैं।

संकल्पः- जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता पाने के लिए संकल्प शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। संकल्प के अभाव में किसी भी कार्य को लम्बे समय तक चला पाना पहाड़ ऐसा प्रतीत होता है। थोड़ी सी कठिनाई या परेशानी आने पर उस कार्य का विकल्प ढूंढने की प्रवृत्ति संकल्प शक्ति को सुदृढ़ नहीं होने देती। परम पूज्य आचार्य जी के शब्दों में 'जीवनभर कठिनाइयों से जूझना ही महापुरुष होना है।' संकल्प शक्ति के आभाव में मनोबल कमजोर होता है, जबकि सशक्त मनोबल से आत्मबल बढ़ता चला जाता है। अतः मनोबल बढ़ाने के लिए छोटे-छोटे संकल्प लें और उन्हें पूरा करते चलें। यथा अस्वाद व्रत, साप्ताहिक व्रत, साप्ताहिक मौनव्रत निश्चित समय पर सोना और जगना, निश्चित समय पर साधना-उपासना का क्रम चलाना यह देखने और करने में छोटी-छोटी बाते लगती हैं, किन्तु यदि बिना किसी व्यवधान के अनवरत रूप से यह नियम पाँच-छः वर्षो तक ही चला लिए जाएँ तो उससे मनोबल, आत्मबल में आशातीत प्रगति होती है। जितने भी महापुरुष हुए हैं उन्होंने अपने जीवन में छोटे-छोटे संकल्पों से प्रारंभ कर बड़े-बड़े संकल्प पूरा करने का मार्ग अपनाया है।

साधना के क्षेत्र में संकल्पों के रूप में- 1. सप्ताह में एक दिन दो-तीन घंटे का मौन रखा जाए फिर उसे बढ़कर प्रतिदिन कर दिया जाए, 2. सप्ताह में एक दिन का अस्वाद व्रत रखा जाए फिर उसे बढ़ाकर प्रतिदिन कर दिया जाय, 3. पहले सप्ताह में एक दिन ब्रह्मचर्य भंग किया जाय फिर दो सप्ताह में, फिर महीने भर में इस प्रकार अपना और अपनी पत्नी के स्वास्थ्य में सुधार तो होगा ही मनोबल भी बढ़ता जायेगा। इसी प्रकार निश्चित समय पर सोना जगना, निश्चित समय पर संध्या जप व ध्यान के लिए साधना में बैठना पूर्वकाल में गुरु अपने शिष्यों को समय-समय पर चान्द्रायण व्रतों का, नौ दिवसीय सत्र, सवालक्ष्य जप संकल्प, एक वर्षीय, पाँच वर्षीय जप ध्यान आदि प्रकार के संकल्प करवाया करते थे।

संकल्प को पूरा करने में अनेक व्यवधान आते रहते हैं तथा अपने घर परिवार के लोग तथा आत्मीय जन खान-पान का सोने-जगने का संकल्प तोड़ने

के लिए नाना प्रकार के प्रलोभन व उदाहरण देकर एक बार न सही कह कर बहलाते रहते हैं, अपना उदाहरण देकर यदा कदा संकल्प तोड़ने को गलत न मानने की दलीलें देते हैं, किन्तु साधकों की कभी-कभी उनके गुरु भी उसकी साधना की परीक्षा लेने हेतु उसे संकल्प तोड़ने की सलाह देते हैं पर दृढ़ संकल्प वाला साधक उसे भी सनम्र अस्वीकार कर देता है। बदले में गुरु के श्राप की जगह आशीर्वाद ही प्राप्त करता है। अस्तु साधना के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए दृढ़तापूर्वक संकल्पों को पूरा करते चलने पर साधक कुछ ही वर्षो में साधना के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त करने लगता है। संकल्प शक्ति के आभाव में भौतिक जीवन में भले ही कुछ सफलता मिल जाय, किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में तो वह एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता, भले ही वह संत-महात्मा का भेष बनाए, कुछ पुस्तकें पढ़कर उपदेशक बना फिरता हो। यह तो एक प्रकार की आत्म-प्रवचना ही कहा जायेगा।

ॐॐॐकार साधना में बिध्न -बाधाएँ

आध्यात्मिक साधनाओं में जो बिघ्न माने गये हैं। प्राय: वही इस साधना में भी आते हैं। इन्हीं को वासना, तृष्णा, अहन्ता कहें या पुत्रेष्णा, वित्तेष्णा और लोकेष्णा कह सकते हैं। भौतिक जीवन में भी इनकी अति करने पर कष्ट कठिनाइयाँ सामने आती हैं। हम अपने साधकों के लिए मर्यादित सीमा तक ही इनकी पूर्ति की सलाह देते हैं।

वासना:- आज कल की परिस्थितियों में पूर्ण ब्रह्मचर्य की किसी से अपेक्षा करना सर्वथा अनुचित है। साधकों को साधना में अच्छी प्रगति के लिए परिवार की संख्या सीमित ही रखना चाहिए एक या दो बच्चे के बाद परिवार नियोजन अपना लेना चाहिए। इससे पति-पत्नी को परिवार का खर्च चलाने में भी ज्यादा कठिनाई नहीं आती। कम बच्चों की देख भाल भी ठीक ढंग से हो जाती है। उनकी पढ़ाई लिखाई पर भी समुचित ध्यान दिया जा सकता है।

अत: साधकों को चाहिए कि अपने सहयोगी के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए पहले साप्ताहिक फिर पाक्षिक बाद में माह में फिर वर्ष में एक बार ही शारीरिक सम्बन्ध बनाने का क्रम परस्पर सलाह मशविरा करके बनायें। इससे शरीर के ओज का क्षरण रूकेगा, विचार शक्ति बढ़ेगी, साधना में भी प्रगति होगी। कालान्तर में वानप्रस्थ की अवस्था आने पर पूर्ण रूपेण संयम बरतने का प्रयत्न करना चाहिए। साधना में यदि पति-पत्नी दोनों सलग्न हो जाएँ हो, यह

नियम बड़ी सरलता से निभ सकता है।

तृष्णा:- अधिक धन की कामना को तृष्णा कहा जाता है। अर्थ के बिना संसार का कोई भी काम नहीं हो सकता। कुछ लोगों ने विशेष कर मध्यकालीन विद्वानों ने अर्थ को हेय मानकर साधकों के लिए कमानें में प्रतिबंध लगा दिया था और साधु, सन्यासी को, मात्र भिक्षा पर निर्भर रहने का परामर्श दे डाला था। यह द्वापर तथा त्रेता युगों में कभी संभव रहा होगा, जब राजा महाराजाओं का खजाना ऋषियों, सन्यासियों के लिए खुला रहता था, किन्तु वर्तमान समय में तो अपनी गृहस्थी का भार स्वयं वहन करते हुए नीति पूर्वक उपार्जित कमाई पर अपने परिवार का भरण पोषण करते हुए साधना करना ही उपयुक्त है। ध्यान रहे पराए अन्य में पल कर साधना, उपासना करने से उसका अधिकांश पुण्य अन्नदाता की झोली में चला जाता है और साधक भिखमंगा का भिखमंगा ही रह जाता है। महर्षि अरविन्द ने लक्ष्मी को देवी मानकर उसको नैतिक तरीकों से अधिक से अधिक उपार्जन पर जोर दिया है। साधकों के लिए अर्थोपार्जन अनिवार्य माना है। अन्यथा लक्ष्मी ऐसी पवित्र देवी अपराधियों, बेईमानों के चंगुल में चली जायेगी। अत: उसे भ्रष्टों, बेईमानों, अपराधियों के हाथ में जाने से बचाने के लिए सत्पुरुषों को अधिकाधिक धनोपार्जन करने का परामर्श दिया है। अपनी वैदिक परम्परा भी अपनी कमाई का दशांस लोककल्याण के निमित्त खर्च करने का निर्देश देती है। जब पवित्र विचारों वाले सत्पुरुष कमायेंगे ही नहीं तो दशांश देगा ही कौन? परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने भी धनोपार्जन को बुरा नहीं माना है। उनका तो स्पष्ट कथन था-भिखमंगी समाप्त होनी चाहिए। अपने साधकों के लिए उन्होंने जीवकोपार्जन की व्यवस्था करना अनिवार्य माना है। अन्यथा साधक दूषित व अपवित्र हाथों का अन्न खाकर अपनी साधना ही गँवा बैठेंगे। इस सम्बन्ध में वे एक उदाहरण भी दिया करते थे, वह यह है कि एक संत ने अपने साधक शिष्य को साधना सिखाकर एकांत में जाकर साधना करने की सलाह दी। शिष्य साधक एकांत में साधना करता रहा और भोजन के लिए समीप के गाँवों से मधुकरी माँगकर काम चला लेता था। उसकी साधना निरंतर आगे बढ़ रही थी। इसी बीच एक वैश्या ने अपने घृणित जीवन से उबरने के लिए एक संत की सलाह मानकर बहुत बड़े भण्डारे का आयोजन किया। साथ ही आसपास के सभी गाँवों के नागरिकों को उस नगरभोज में भोजन करने को आमंत्रित कर दिया। परिणाम स्वरुप उन गाँवों में उस दिन चूल्हें जले ही नहीं, जहाँ साधक नित्य

मधुकरी लेने जाता था। जब उक्त साधक प्रतिदिन की भांति मधुकरी के लिए गाँव में गया तो वहाँ के गृहस्थों ने एक स्वर से उन्हें भी उसी भण्डारे में जाकर भोजन करने की सलांह दी। मजबूर होकर उक्त साधक भी उस भण्डारे में भोजन करके वापस जंगल में अपनी साधना स्थली पर आ गया। उस दिन वह सोने के बाद जागकर जब ध्यान में बैठा तो ध्यान में एक सुंदर युवती उसके सामने आ जाती, बार-बार प्रयत्न करने पर भी साधक उसे अपने ध्यान से हटा न सका। 3-4 दिन प्रयत्न करने पर भी वह जब सफल न हुआ तो वह अपने गुरु की शरण में जा पहुँचा और ध्यान में आयें इस व्यवधान को दूर करने की प्रार्थना किया।

गुरु ने उससे खान-पान की जानकारी माँगी, किन्तु साधक वैश्या के भण्डारे में उस दिन भोजन करने को यह मानकर उचित मान रहा था कि कई गाँवों के सभी लोग जब भण्डारे में खा रहे हैं तो एक दिन उसके भी भण्डारे में खा लेने में कोई हर्ज नहीं है। दूसरे दिन उसके गुरु ने अपने ध्यान में देखा कि उनका शिष्य एक भण्डारे में पकवान खा रहा है। ध्यान के बाद शिष्य को बुलाकर पूछा कि "उस दिन किसके भण्डारे में खाना खाये थे।" शिष्य ने कहा कि "वैश्या ने अपने अपवित्र जीवन से मुक्त होकर सामान्य नागरिक का जीवन अपनाने के लिए प्रायश्चित स्वरूप भण्डारा किया था। आसपास के किसी गाँव में चूल्हा ही नहीं जला था, अत: मैंने भी सभी लोगों के कहने पर उसी भण्डारे में जाकर उस दिन खा लिया था।" गुरु ने शिष्य को बताया कि "वही वैश्या ध्यान में आकर उसकी साधना में विघ्न डाल रही है।" शिष्य के विशेष अनुरोध पर गुरु ने उसे प्रायश्चित स्वरूप चांद्रायन व्रत करने की सलाह दी और अपने ही समीप रोककर उसे चांद्रायन व्रत करवाया। तीन माह तक इन व्रतों की शृंखला चलवाकर वह साधक पुन: पूर्ववत साधना की स्थिति में पहुँच गया। यह तो एक छोटा सा उदाहरण है। आज भी उचित-अनुचित का विचार किये बिना आहार करने वाले, धन संग्रह करने वाले साधक साधना के क्षेत्र में खाली हाथ ही रह जाते है।

हमारे गुरुदेव भी अनीति उपर्जित अन्न खाकर साधना करने से सबको बार-बार मना करते थे। अपने सभी शिष्यों को भण्डारा, मृतक भोज तथा शादी-ब्याहों में सम्मिलित होकर मालपुआ खाने से रोकते थे। उनका कहना था कि ईमानदारी की कमाई की सूखी रोटी खाकर तो साधना की जा सकती है।

किन्तु अनीति पूर्वक अर्जित धन के उपयोग से साधक का सत्यानाश ही हो जाता है। अतः ॐॐॐकार के साधकों के लिए यही उपयुक्त है कि स्वउपार्जित पवित्र अन्न पर ही अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करें। नीति पूर्वक धनोपार्जन की गणना तृष्णा में नहीं होती। तृष्णा तो असन्तोषी लोगों की, अनीति पूर्वक कमाई को ही कहा जाता है। यहाँ पर एक प्रश्न यह खड़ा हो जाता है कि किसी के घर जाने पर वह स्वागतार्थ जलपान की व्यवस्था तो करेगा ही। ऐसी अवस्था में दिन में यदि 4-5 घरों में जाना पड़ा तो जलपान, नास्ता के स्वागत में ही पेट इतना भर जायेगा कि आप वापस अपने घर पर कुछ भी न खा सकेंगे। इस सम्बंध में साधकों के लिए विशेष सलाह दी जाती है कि अपने घर से ही खाना खाकर निकला जाए। किसी के यहाँ जल के अतिरिक्त एक दाना भी मुँह में न डाला जाय। विशेष परिस्थिति में दिन भर में केवल एक ही घर में एक कप चाय या प्रज्ञापेय लिया जा सकता है। दूध या ठंडापेय व अन्य खाद्य पदार्थ पूरी तरह वर्जित हैं।

साधना के क्षेत्र में आहार का विशेष महत्व है। जैसा खाए अन्न वैसा बनें मन, की उक्ति शतप्रतिशत सत्य है। अतः साधक के स्वउपार्जित अन्न खाकर साधना करने में सफलता सुनिश्चित मानी जानी चाहिए।

तृष्णा का क्षेत्र विस्तृत होकर लोभ-मोह के रूप में सामने आता है। लोभ का अभिप्राय धन का अपने लिए अधिकाधिक मात्रा में उपार्जित करना है। उसके लिए भले ही अनुचित रीति ही क्यों न अपनानी पड़े। मोह का दायरा अपने से बढ़कर अपने परिवार तथा रिश्तेदारों तक विस्तृत हो जाता है। इस सम्बन्ध में हमारा इतना ही कहना है कि ईमानदारी से कमाई करते हुए, एक महीने में एक दिन की कमाई लोक कल्याण में लगाया जाता रहे। शाम-सुबह की संध्याओं में एक घन्टा ॐ ॐ ॐकार मंत्र का ध्यान के साथ जप तथा एक घन्टे नाड़ी शोधन तथा लोम विंलोम प्राणायाम व अन्य शारीरिक व्यायाम के लिए निकाला जाय। कम से कम एक घन्टा नित्य प्रति जनसम्पर्क कर लोगों को युग निर्माण के सम्बंध में बताया जाय। उन्हें साधना उपासना के लिए प्रेरित किया जाय। एक घन्टा स्वयं नित्य सत्साहित्य के अध्ययन में खर्च किया जाए। इस प्रकार 4 घन्टे के नित्य नियोजन से आत्मिक विकास का क्रम चल पड़ेगा। अतएव योग के साधकों को ईमानदारी की कमाई खाकर ही साधना में मनोवांछित फल की आशा करनी चाहिए।

अहन्ता :- इसके दायरे में क्रोध, अहंकार, लोकेष्णा का क्षेत्र आता है। क्रोध तो साधक की साधना को उसी प्रकार भस्म कर देता है जैसे रक्त गर्म होकर विषाक्त होता जाता है और शरीर के लिए घातक बन जाता है। अतएव साधक को मस्तिष्क शीतल रखना पड़ता है, कितनी ही उत्तेजक परिस्थिति क्यों न आ जाय यदि ऐसी स्थिति में भी साधक शान्त बना रहा, तो मानना चाहिए कि उसने साधना की एक सीढ़ी पार कर ली हैं।

अहंकार साधना के मार्ग में बहुत बड़ा व्यवधान है। प्राय: देखा जाता है कि थोड़ा बहुत साधना करते ही अहंकार बढ़ने लगता है और हो या न हो पर टीका, चन्दन, गले में माला व दुपट्टा, रंगबिरंगा पहनावा पहन कर स्यवं को एक महान सिद्ध बनने का तो दिखावा करने की लगता है। इसका परिणाम नाम मात्र की जो शक्तियाँ साधना से प्राप्त हुई थी वह भी क्षीण होने लगती हैं। अहंकार विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होने लगता है हाव-भाव, कार्य-व्यवहार तथा वाणी आदि के माध्यम से इस अहंकार की अभिव्यक्ति होने लगती है।

लोकेष्णा भी अहंकार का ही एक रूप है। लोकेष्णा का प्रकटीकरण सामान्य रूप से तीन मकारों में सरलता से देखा जा सकता है यह है माला, मंच, माइक। इन तीनों के लिए तो साधना चाहे रंच मात्र भी न हो कुछ पुस्तकों को रटकर बस उसे एक्सन के साथ नाना प्रकार के हाव-भाव बनाकर सब को सुनाने को व्याकुल होता रहता है। यहाँ यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि साधना-उपासना और लोक सम्मान की चाहत एक साथ नहीं चल सकती। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ने तो केशवचन्द्र सेन जैसे विश्व विख्यात वक्ता तथा ब्रह्म समाज नामक धार्मिक आन्दोलन के प्रणेता तक को कहा करते थे- 'क्यों केशव क्या तुम्हें उपदेश देने का अधिकार भगवान (ब्रह्म) ने दिया है? अर्थात् क्या तुमने ब्रह्म के दर्शन किए हैं, जो दूसरों को मार्ग बताने चलें। क्यों इतना बड़-बड़ करते हो? यह सुनकर केशवचन्द्र सेन लज्जित हो जाते थे और निराकार उपासक होते हुए भी केशवचन्द्र सेन परम हंस जी को पूर्ण ब्रह्मज्ञानी, भगवान तक कहने लगे थे और स्वयं उनका प्रचार अपने भाषणों और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से करने लगे थे। अत: साधक को प्रदर्शन, बड़प्पन व अन्य प्रकार के अभिमानों से बचे रहना चाहिए।

परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने कुण्डलिनी के उत्थान करते समय साधक के स्वभाव एवं गुणों में परिवर्तनों के साथ-साथ साधना में

सम्भावित खतरों की ओर से सावधान करते हुए सावित्री कुण्डलिनी एवं तंत्र नामक वाङ्मय में लिखा है- ''स्वभाव में अन्तर आने वाली बात ही यह परिचय देती है कि कुण्डलिनी की पहुँच कितनी ऊँची हो गई। स्वाधिष्ठान में चंचलता, आतुरता स्फूर्ति जैसे-उत्तेजनात्मक प्रयास चल पड़ते हैं। क्रोध एवं अहंकार की मात्रा भी बढ़ जाती है। यह उफान भर हे। उफान स्थायी नहीं होते। वे कुछ ही समय उछल-कूद करने के बाद स्थिर होते और तली में बैठ जाते हैं। आत्म-संयम की कमी से यह संभव नहीं हो पाता कि अगली सीढ़ी पर बढ़ने की परीक्षा उत्तीर्ण कर सके। इस प्रकार ऊपर के चक्रों की दिशा में प्राणाग्नि का बढ़ना स्वभाव में तरह-तरह की उत्तेजनाएँ भरता है। इसमें से कुछ सात्विक भी हो सकती हैं कुछ राजसिक और तामसिक भी। लगता है कई प्रकार के आवेश आते हैं और उतावली अपनाने के लिए बैचेन करते हैं। इन सभी को अधिक दृढ़तापूर्वक संयमित करना पड़ता है। न कर पाने पर उत्तेजना कार्यान्वित होने लगती है और साधक के किये हुए प्रयासों को निष्फल बना देती है। अस्तु इस मार्ग को अपनाने पर पूर्णता तक पहुँचने तक क्रमशः अधिक कठोर संयम बरतने की आवश्यकता पड़ती है। लक्ष्य तक पहुँचने तक क्रमशः अधिक कठोर संयम बरतने की आवश्यकता पड़ती है। धीर, वीर, गंभीर की तरह फूँक-फूँक कर कदम बढ़ाना पड़ता है और ध्यान रखना पड़ता है कि यह नशे जैसे आवशे में कुछ ऐसा न कर बैठें जिसे उद्धत कहा जा सके।'' सावित्री कुण्डलिनी वां0 10-15।

अस्तु साधना काल में साधक को पग-पग पर सोच विचार के बाद ही अपने क्रिया कलापों को अंजाम देना चाहिए अन्यथा पूरी साधना सांसारिक वासना, तृष्णा तथा अहन्ता की भेंट चढ़ जाती हे। और साधक अन्ततोगत्वा प्राप्त आध्यात्मिक शक्ति से हाथ धो बैठता है। इसीलिए ऋषियों ने काम-क्रोध, लोभ-मोह को आत्मिक प्रगति में बाधक माना है।

आसन

योग साधना ग्रंथों में 84 आसनों का वर्णन है किन्तु यहाँ पर साधकों के सुविधानुसार किसी भी आसन पर लगातार लगभग 3 घण्टों तक बैठकर साधना कर लेने की क्षमता प्राप्त कर लेने पर साधक आसन सिद्ध माना जाएगा। क्योंकि 84 आसनों में अधिकांश आसन स्वास्थ्यवर्धक आसन हैं। अतः उन सबको साधकों के लिए अनिवार्य नहीं माना गया। हमने आसन के संबंध में न्यूनतम

योग्यता को ही पर्याप्त माना है। सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन, वज्रासन या सहज पालथी इनमें से सुविधनुसार किसी भी एक को अपनाया जा सकता है। लम्बे समय तक उसी का अभ्यास किया जायं तो इससे आसन की सिद्धि प्राप्त होती है।

हमारा उद्देश्य आध्यात्मिक योग विज्ञान को जन सामान्य के लिए सुलभ कराना है। नाना प्रकार के आसनों के जंजाल में फंसाकर इस साधना को बाजीगरी या नटों का खेल बनाना नहीं है। विभिन्न साधनाओं में विशेष उपयोगी आसनों को इन साधनाओं के साथ उल्लेख कर दिया गया है। जिसे जिज्ञासु साधक पढ़कर अपनी साधना में जोड़ते रहेंगे।

प्राणायाम की अत्यावश्यक तीन क्रियाएँ :-

पूरक- श्वास अन्दर खींचना।

कुंभक- श्वास को रोके रखना। पूरक करने के बाद जब वायु अन्दर ही रोकी जाती है, तब वह स्थिति **अन्तःकुंभक** कहलाती है। इसी प्रकार वायु के बाहर निकाल देने के पश्चात जब वायु को बाहर ही रोका जाता है तब वह स्थिति बाह्य कुंभक कहलाती है। **रेचक-श्वास** बाहर निकालना।

त्रिबंध :- बंध तीन प्रकार के होते हैं, **१. मूल बंध, २. जालंधर बंध, ३. उड्डियन बंध,** लेकिन जब ये तीनों बन्ध एक साथ लगायें जाये तो उसे महाबंध कहा जाता है।

मूलबंध :- जिस प्रकार पशु गोबर करने के पश्चात् अपनी गुदा को अंदर की तरफ खींचकर रोक लेते हैं, उसी प्रकार अपनी गुदा ऊपर (भीतर) की तरफ खींच कर रोकने को मूल बंध कहा जाता है। प्राणायाम के समय यह हमेशा लगा रहना ज्यादा लाभप्रद होगा।

जालंधर बंध- जब दोनों (अन्तः या बाह्य) में से कोई भी एक कुंभक लगा होता है, तब गर्दन को झुकाकर गले के नीचे की दोनों हंसलियों के जोड़ में जो गड्ढा बनता है, उसमें ठुड्ढी को स्पर्श कराकर हल्का दबाते हुए रोके रखने की स्थिति को जालंधर बंध कहा जाता है।

उड्डियान बंध :- बाह्य कुंभक की स्थिति में पेट को पीठ की तरफ खींचकर जितना सम्भव हो सके उतना पीठ से स्पर्श कराने का प्रयास किया जाता है। इस स्थिति में रुके रहना ही उड्डियान बंध कहलाता है। यह बंध केवल बाह्य कुंभक की स्थिति में ही लगाया जाता है।

विशेष :- प्राणायाम करते समय साधकों को हमेशा मूलबंध लगाए रखने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही दोनों कुंभकों की स्थिति में जालंधर बंध तथा बाह्य कुंभक की स्थिति में तीनों बंधों के लगाने का अभ्यास करना चाहिए। इससे प्राणायाम के द्वारा चक्रों के जागरण की प्रक्रिया में शीघ्र ही आशातीत सफलता मिलती है।

प्राणाकर्षण प्राणायाम

प्राणायाम- प्राणायाम भी अनेकों हैं किन्तु साधकों को तीन न्यूनतम तीन प्राणायामों-प्राणाकर्षण, नाड़ीशोधन तथा लोम-विलोम सूर्यबेधन प्राणायाम ही अनिवार्य माने गए हैं। इनसे आवश्यक साधनात्मक योग्यता का विकास हो जाता है। सूक्ष्म में व्याप्त प्रकृति प्रदत्त प्राणतत्व को आकर्षित कर अपने अंग-प्रत्यंग में धारण करने की प्रक्रिया को प्राणाकर्षण प्राणायाम कहा जाता है। प्राणतत्व का मूल स्रोत सूर्य है। अत: प्रात:काल साधक को पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठकर यह प्राणायाम करना चाहिए। ॐॐॐकार साधक संघ के साधक उत्तर की ओर मुँह करके यह साधना करें, तो अधिक उपयोगी होगी, क्योंकि परम वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मा सूक्ष्म-कारण सत्ता में स्थिति होकर देवात्मा हिमालय में विशेष रूप से विराजमान हैं तथा अन्य ऋषिसत्ताओं के सान्निध्य का लाभ भी उत्तराभिमुख साधना करने से प्राप्त हो जाता है। वैसे यह प्राणायाम चौबीस घन्टों में किसी भी समय किया जा सकता है। स्मरण रखें, इस प्राणायाम-साधना के लिए प्रात:काल आत्मबोध की साधना के पश्चात् शौचादि से निवृत्त होकर उत्तर दिशा में मुँह करके बैंठे। कमर सीधी, दोनों आँखें बन्द रखें। हाथ गोदी में इस प्रकार रखें कि बाँयी हथेली नीचे और दाहिनी हथेली ऊपर रहे। अब दोनों नाथुनों से धीरे-धीरे श्वास खींची जाए। इस बीच ध्यान भी करते रहें कि हिमालय में विद्यमान् ऋषि आत्माओं का तेज प्रकाश के रूप में या बादलों के रूप में या दूध झाग के रूप में हमारी तरफ आ रहा है, हमारे सहस्त्रार चक्र से नासापुटों से रोम-रोम में हमारे अंग-प्रत्यंग में प्रवेश कर रहा है। थोड़ी देर अन्दर वायु रोकी जाय और भावना की जाय कि उसके प्रभाव से हमारे अन्दर विद्यमान कषाय-कल्मष, वस्त्रों से जिस तरह मैल साबुन-पानी के साथ घुलकर बाहर निकलता है, उसी तरह रेचक करते समय वायु में मिलकर बाहर निकलते जा रहे हैं। थोड़ी देर खाली पेट रहा जाय और उस गंदगी की जगह प्रकाश स्वरुप, शक्ति स्वरुप ओजस्-तेजस् विराजमान होते चले जा रहे हैं। यह भावना की जाय।

ॐॐॐकार साधकों के लिए पूज्य गुरुदेव तथा वन्दनीया माता जी दोनों का अथवा इनमें से किसी एक को ध्यान का केन्द्र मानकर यह भावना करनी चाहिए कि हिमालय की सर्वोच्च चोटी, जो बर्फ से ढकी हुई है, उसके ऊपर स्वर्णिम सिंहासन पर हमारी इष्ट सत्ता विद्यमान हैं। उनके आज्ञाचक्र से प्रकाश किरणें निकल कर प्रकाश पुंज के रूप में, बादलों के रूप में या दूध-झाग के रूप में हमारी तरफ प्रवाहित होती चली आ रही है। हम उसमें सराबोर हो रहे हैं, हमारे अंग-प्रत्यंग, रोम-रोम में शक्तिपुंज प्रवेश कर रहा है। अंदर में मौजूद कषाय-कल्मष रेचक के साथ वायु में मिलकर बाहर निकलते भागते चले जा रहे हैं। उसके स्थान पर दैवी चेतना युक्त प्रकाश स्थापित होता चला जा रहा है। यह ध्यान-चिंतन जितना ही गहरा होगा, उतनी ही मात्रा में हम शक्ति सम्पन्न, प्राणवान् तथा आत्मबल सम्पन्न होते चले जायेंगे। परिणामत: अपेक्षाकृत बड़े कार्य, उच्च स्तरीय कठोर साधना सम्पन्न करने में सफल होने लगेंगे। यह प्राणायाम न्यूनतम 15 मिनट से लेकर अधिकतम अपनी सुविधानुसार जितना संभव हो, उतनी देर तक किया जा सकता है। सूर्योदय या उसके पश्चात् यह प्राणायाम सूर्याभिमुख होकर करना चाहिए।

नोट:- इस प्राणायाम में किसी प्रकार के बन्ध नहीं लगाए जाते। केवल रेचक-पूरक तथा कुंभक चलता है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

इस प्राणायाम का उद्देश्य मानव काया में सन्निहित जन्म-जन्मांतर के पापों, कुसंस्कारों का शमन करना है। नाड़ी शोधन प्रक्रिया में ऋषियों द्वारा बतायी गयी सुषुम्ना नाड़ी का शोधन-परिमार्जन किया जाता है। इसी सुषुम्ना को अध्यात्म की भाषा में स्वर्गपथ भी कहा गया है। इसी की धुलाई, सफाई का कार्य नाड़ी शोधन प्राणायाम द्वारा किया जाता है। जिस प्रकार वर्षों से जाम किसी पाईप में पानी या वायु का बहाव रूक जाता है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर के कषाय-कल्मषों से परिपूर्ण सुषुम्ना को पाक-साफ किये बिना वायु का संचार मूलाधार से सहस्त्रार तक तथा सहस्त्रार से मूलाधार तक होना रूक जाता है। जब तक सुषुम्ना को स्वच्छ-सशक्त करके साधक योग-साधना नहीं करता, तब तक उसकी प्रगति पंगु ही बनी रहती है। इसी को भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है-

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रूद्ध्वा प्राणायामपरायणा:॥४/२९॥

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति।
सर्वेऽप्यते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः॥४/३०॥

अथात्- दूसरे कोई ही योगीजन अपना वायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपान वायु को हवन करते हैं तथा अन्य कितने ही संयमित आहार करने वाले, प्राणायाम-परायण पुरुष प्राण और अपान की गति को रोककर प्राणों को प्राणों में ही हवन किया करते हैं। ये सभी साधक यज्ञों द्वारा पापों का नाश कर देने वाले और यज्ञों को जानने वाले हैं।

किसी भी योगी को भगवान् श्रीकृष्ण की इस श्रेष्ठ साधना पद्धति में आगे बढ़ने के लिए नाड़ी शोधन की प्रक्रिया ही एक मात्र आधार है। स्नानादि से निवृत्त होकर योग की शारीरिक व्यायाम परक क्रियाओं को पाँच-सात मिनट में पूरा कर लिया जाए। इससे शरीर में हल्की ऊष्मा का संचार हो जाता है, जिससे साधक की मनःस्थिति प्राणायाम करने के अनुकूल बन जाती है।

लोम-विलोम, सूर्य वेधन तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम में जब प्राण वायु खींची जाय, तो मन सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर विद्यमान इड़ा-पिंगला नाड़ियों में वायु का प्रवेश होने का तथा रेचक करते समय इन्हीं में से निकलने का ध्यान किया जाय। ध्यान रहे सुषुम्ना के बाएं स्थित नाड़ी को इड़ा तथा दाहिनी तरफ स्थिति नाड़ी को अध्यात्म विज्ञानियों ने पिंगला नाड़ी का नाम दिया है।

नोड़ी शोधन प्राणायाम करते समय बायीं नाक से वायु खींचते व निकालते समय सुषुम्ना के अंदर मौजूद बायीं नाड़ी अर्थात् इड़ा में वायु का प्रवेश तथा निकालते समय उसी से वायु को निकलते देखने का प्रयत्न किया जाता है तथा दाहिनी नाक से वायु खींचते समय सुषुम्ना के अंदर मौजूद दाहिनी तरफ पिंगला नाड़ी में वायु का प्रवेश करना तथा निकालते समय उसी पिंगला नाड़ी से वायु के निकलने की ध्यान भावना की जाती है। इस प्रकार सुषुम्ना के अंदर साधक का जितना ही मन प्रवेश करता जायेगा प्राणायाम में उतनी ही अधिक सफलता मिलती जायेगी।

इन प्राणायामों में प्राणवायु खींचने, अंतःकुंभक, रेचक तथा बाह्य कुंभक में समय का अनुपात 4:2::4:2: का समय रखा जाय। जैसे 16 गिनती तक यदि खींचा जाय, तो 8 की गिनती तक रोका जाय, फिर 16 की गिनती तक निकाला जाय, और 8 की गिनती तक खाली पेट रहकर तीनों बंध (मूल बंध, उड्डियान बंध एवं जालंधर बंध) लगाये जायें।

नाड़ी शोधन प्राणायाम करते समय प्राण वायु को सर्वप्रथम बायें नाक से खींचा जाता है। उस समय ध्यान यह किया जाता है कि वायु रीढ़ के अंदर बायें साइड में विद्यमान इड़ा नाड़ी से मूलाधार तक जाती है तथा अंत:कुंभक करने के बाद उसी इड़ा नाड़ी से वायु बाहर निकाली जाती है। इस समय ध्यान किया है कि नाभि चक्र में स्थित चन्द्रमा की धुलाई-सफाई करने के बाद गंदगी को समेट कर प्राणवायु वापस निकल रही है। यह प्रक्रिया तीन बार की जाती है। चौथी बार दायीं नाक से वायु खींचते समय रीढ़ के अन्दर दाहिने साइड में विद्यमान पिंगला नाड़ी में वायु प्रवेश का ध्यान किया जाता है तथा अंत:कुंभक करने के बाद पिंगला से ही वायु वापस निकाली जाती है। इस समय नाभि चक्र में उदीयमान सूर्य का ध्यान किया जाता है। उसके बाद अंत:कुंभक के समय वायु द्वारा सूर्य की धुलाई-सफाई का ध्यान किया जाता है। उसके बाद पिंगला मार्ग से ही उस दूषित वायु को बाहर निकाला जाता है तथा बाह्य कुंभक के समय स्वच्छ सूर्य का ध्यान नाभी में किया जाता है। इस प्रकार तीन चार इड़ा से और तीन बार पिंगला से पूरक, रेचक और कुंभक करने के बाद सातवीं बार दोनों नासिका से वायु खींची जाती है तथा भावना की जाती है कि प्राणवायु सुषुम्ना में प्रवेशकर रही है। साथ ही जालन्धर एवं मूलबन्ध लगाते हुए नाभि चक्र में सूर्य का ध्यान किया जाता है। अंत:कुंभक के पश्चात् वायु को नाक बंद करके मुँह से धीरे-धीरे पूरा बाहर निकाल दिया जाता है और नाभि में प्रकाशित सूर्य का ध्यान किया जाता है। इन सात प्राणायामों को मिलाकर एक नाड़ी शोधन प्राणायाम बनता है। इस प्राणायाम को एक से प्रारंभ करके प्रति सप्ताह एक-एक बढ़ाया तथा जब घटाना हो, तो एक-एक करके एक सप्ताह में एक ही घटाया जाता है। इसे 10-15 मिनट तक किया जा सकता है।

लोम-विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम

इस प्राणायाम का प्रारंभ दाहिने नाक से प्राण वायु खींचकर पिंगला नाड़ी में प्रवेश का ध्यान किया जाता है तथा नाभि चक्र में निकलते हुए सूर्य का ध्यान किया जाता है। आवश्यक अंत:कुंभक करने के बाद बायीं नाक (इड़ा नाड़ी) से वायु निकालने की क्रिया ध्यान करते हुए ध्यान किया जाता है। दूसरी बार इड़ा नाड़ी से वायु खींची जाती है और पहले की तरह अंत:कुंभक के बाद पिंगला नाड़ी से रेचक किया जाता है। इस बार भी नाभि चक्र में सूर्य का ही ध्यान किया जाता है। इस प्रकार एक बार दाहिने तथा एक बार बायें नाक से

पूरक-रेचक-कुंभक करते हुए एक प्राणायाम पूरा होता है। इस प्राणायाम को पाँच की संख्या से प्रारंभ करके प्रतिदिन एक-एक के क्रम से बढ़ाया और जब घटाना हो, तो प्रतिदिन एक-एक के क्रम से घटाया जाता है। अंतिम में जब यह लोम-विलोम प्राणायाम पूरा हो जाय तो दोनों नासिका छिद्रों से धीरे-धीरे पूरक कर अंत:कुंभक के पश्चात् रेचक, दोनों नासा पुटों से एक साथ किया जाता है तथा ध्यान किया जाता है कि इस बार वायु इडा, पिंगला के मध्य अवस्थित सुषुम्ना से अन्दर जाती व बाहर निकलती है। इस बार भी उड्डियान बंध के समय नाभि में चमकते सूर्य का ध्यान किया जाता है। प्राणायाम करते समय मन को एकाग्र करके सुषुम्ना में ही केन्द्रित रखना चाहिए। मन के इधर-उधर भटकने से प्राणायाम के आध्यात्मिक लाभ से वंचित रह जाना होता है। साधकों को केवल शारीरिक व्यायाम का ही लाभ मिलकर रह जाता है। गर्मी के दिनों में प्राणायाम की संख्या कम कर लेनी चाहिए अन्यथा शारीरिक ऊष्मा बढ़ सकती है।

प्राणायाम संबंधी विशेष जानकारी-

अष्टांग योग का अत्यधिक महत्वपूर्ण अंग प्राणायाम है। प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ प्राणों का विस्तार है। प्राण का प्रभाव शरीर मन और अन्तश्चेतना सभी पर पड़ता है। जब केवल गहरी श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया चलाई जाती है, तब उसका प्रभाव शरीर-मन तक ही सीमित रहता है, किन्तु इसके साथ जब विशेष भावना तथा ध्यान का पुट भी जुड जाता है, तब यह प्राणायाम शरीर-मन के साथ-साथ अन्तश्चेतना को विशेष रूप से प्रभावित करता है। आध्यात्मिक प्रगति की दृष्टि से इसी प्राणायाम का प्रयोग किया जाना श्रेयस्कर होता है, अन्यथा प्राणायाम का सीमित मात्रा में ही लाभ मिल पायेगा। प्राणायाम से आकर्षित होने वाले प्राण कण चेतना के आदि स्त्रोत सविता अर्थात् ब्रह्म से निरन्तर निसृत होते और संसार के कण-कण में संव्याप्त होते रहते हैं इन्हें प्राणाकर्षण प्राणायाम के माध्यम से तो कभी भी आत्मसात् किया जा सकता हे। प्राणकणों का साकार स्वरूप खिड़कियों, रोशनदानों अथवा टार्च की रोशनी अंधेरे में पड़ने पर प्रकाश की रोशनी के मार्ग में खुली आँखों से देखा जा सकता है। पर यह होते हैं अस्पर्श ही। प्राणायाम के माध्यम से इन प्राण कणों को तो कभी भी ग्रहण व आत्मसात किया जाता है। इसी प्रकार एकाग्रतारूपी टार्च और भक्ति रूपी रोशनी में साधक अपने इष्ट के दर्शन कर सकता है।

स्वास्थ्यवर्धक प्राणायाम में वायु का आवागमन मात्र फेफड़ों तक माना

जाता है, जबकि आध्यात्मिक प्राणायाम में ऋषियों ने प्राणवायु का इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना के माध्यम से मूलाधार चक्र तक पहुँचना और वहाँ पर प्रसुप्त पड़ी अग्नि को प्रज्वलित व प्रकाशित करते देखा व जाना है। इस सम्बन्ध में परम पूज्य आचार्य श्री के विचार, जो उन्होंने समय-समय पर अपने परिजनों को बताया-सिखाया है, नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं।

'प्राणायाम में श्वास को खींचना-रोकना भर ही नहीं होता, वरन् उसके आवागमन की गति को भी नियंत्रित रखना होता है। उनकी चाल एक जैसी रहनी चाहिए। कुंभक के प्रहार रुकने का समय और वापसी की प्रवाह प्रक्रिया इन सबमें समय एवं गति की क्रमबद्धता बनी रहनी आवश्यक है। अस्त-व्यस्तता से अनियमितता एवं नियंत्रण न रहने से प्राणयोग का आधार ही नष्ट हो जाता है। और वह मात्र श्वास लेने (डीप ब्रीदिंग) की सामान्य परिपाटी मात्र बनकर स्वल्प फलदायक रह जाती है। महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों के लिए की गयी प्राणयोग की साधना में जहाँ श्रद्धा विश्वास भरी संकल्पशक्ति का समावेश करना जरूरी है, वहीं उसकी तालबद्धता का अभ्यास करना भी आवश्यक होता है।

(वाङ्मय 15, पृष्ठ 7.27)

'श्वांस खींचते समये प्राणऊर्जा का वायु के साथ प्रचुर मात्रा में समावेश होना, उसका सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करना, सुषुम्ना (मेरुदण्ड मध्य भाग) मार्ग से इड़ा धारा (वाम भाग के ऋणात्मक विद्युत् प्रवाह) द्वारा मूलाधार तक पहुँचना, वहाँ अवस्थित प्रसुप्त चिनगारी को झकझोरना, थपथपाना, जाग्रत करना यह प्राणायाम का पूर्वार्ध है। उत्तरार्ध में प्राण को पिंगला मार्ग से (मेरुदण्ड के दक्षिणी भाग के धन विद्युत प्रवाह) होकर वापस लाया जाता है। दूसरी बार पिंगला मार्ग से प्राणवायु का प्रवेश कराया जाता है तथा इड़ा मार्ग से वापस निकाला जाता है। यह पूरा मिलकर एक प्राणायाम होता है।

(वाङ्मय 15, पृष्ठ 7.23)

'आत्माग्नि में प्राणाग्नि पहुँचाना प्राणायाम है। यों गहरी श्वांस-प्रश्वांस के साथ फेफड़ों के व्यायाम करने को भी आरोग्यवर्धक प्राणायाम कहते हैं। शरीर शास्त्र की दृष्टि से उसकी उपयोगिता है। इससे अधिक ऑक्सीजन मिलती है और श्वांसयंत्रों का व्यायाम होता है, पर अध्यात्म शास्त्र का योग-प्राणायाम इससे भिन्न होता है। उसमें ब्रह्माण्डव्यापी प्राण की अभीष्ट मात्रा आत्मप्राण तक पहुँचाई जाती है। इस प्रकार उसकी स्थिति एवं सम्पदा बढ़ती

जाती है। फलत: भौतिक सफलताओं और आत्मिक विभूतियों के समस्त अवरूद्ध मार्ग खुल जाते हैं।'

'आध्यात्मिक प्राणायाम वे हैं, जिनमें ब्रह्माण्डीय चेतना को जीव चेतना में सम्मिश्रित करके जीवसत्ता का अन्त:तेजस् जाग्रत किया जाता है। कुण्डलिनी साधना में इसी स्तर के प्राणयोग की आवश्यकता रहती है। सूर्यवेधन प्राणायाम इसी स्तर का है। उसमें ध्यान-धारणा अधिकाधिक गहरी होनी चाहिए और प्रचण्ड संकल्प शक्ति का पूरा समावेश रहना चाहिए। श्वास खींचते समय महाप्राण को विश्वप्राण को पकड़ने और घसीटकर आत्मसत्ता के समीप लाने का प्रयत्न किया जाता है। श्वास के साथ प्राण तत्व की अधिकाधिक मात्रा रहने की भांवभरी मान्यता रहनी चाहिए। श्वास में ऑक्सीजन की जितनी अधिक मात्रा होती है, उतना ही उसे आरोग्य वर्धक माना जाता है। ऑक्सीजन की न्यूनाधिक मात्रा का होना क्षेत्रीय प्रकृति-परिस्थितियों पर निर्भर है, किन्तु प्राण तत्व तो सर्वत्र समान रूप से संव्याप्त है। उसमें से अभीष्ट मात्रा अपनी संकल्प शक्ति के आधार पर उपलब्ध की जा सकती है।'

(वाङ्मय 15. पृष्ट 7.22)

प्राण का अग्नि पर प्रहार-यही है कुण्डलिनी जागरण की प्रधान प्रक्रिया। मेरुदण्ड के वाम भाग के विद्युत प्रवाह को इड़ा कहते हैं। नासिका से वायु खींचते हुए उसके साथ प्रचण्ड प्राण प्रचुर मात्र में घुला होने की भावना की जाती है। खींचे हुए श्वास को मेरुदण्ड मार्ग से मूलाधार चक्र तक पहुँचने की संकल्पपूर्वक भावना की जाती है। यह मान्यता परिपक्व की जाती है कि निश्चित रूप से इस प्रकार अंतरिक्ष से खींचा गया और मेरुदण्ड मार्ग से प्रेरित किया गया प्राण मूलाधार तक पहुँचता है और उस पर आघात पहुँचाकर जगाने का प्रयत्न करता है। बार-बार लगातार प्रहार करने की भावना श्वास-प्रवास के द्वारा की जाती है। मेरुदण्ड मार्ग से मूलाधार तक इड़ा शक्ति के पहुँचने का विश्वास दृढ़ता पूर्वक चित्त में जमाया जाता है।

प्रहार के उपरान्त प्राण को वापस भी लाना पड़ता है। यह वापसी दूसरी धरा पिंगला द्वारा होती है। पिंगला मेरुदण्ड में अवस्थित दक्षिण पक्ष की प्राण धरा को कहते हैं। इड़ा से गया प्राण मूलाधार की प्रसुप्त सर्पिणी महाअग्नि पर आघात करके (झकझोर कर) पिंगला मार्ग से वापस लौटता है यह एक प्रहार हुआ।

दूसरा इससे उलटे क्रम से होगा दूसरी बार दाहिनी ओर से प्राण वायु

का जाना और बांयीं ओर से लौटना होता है। इस बार पिंगला से प्राण का प्रवेश और इड़ा से वापस लौटना है। प्रहार पूर्ववत् एक बार इड़ा से जाना-पिंगला से लौटना होता है। दूसरी बार पिंगला से जाना इड़ा से लौटना। यही क्रम जब तक प्राणायाम प्रक्रिया चलानी हो, तब तक चलना चाहिए। इसे अरणी मंथन (प्राणों का मंथन जैसी प्रक्रिया) कहा जाता है इसे अनुलोम-विलोम क्रम कहते हैं। यही कुण्डलिनी जागरण के लिए प्रयुक्त होने वाला सूर्यवेधन प्राणायाम है।

(वाङ्मय 15. पृष्ट 7.25)

प्रत्याहार :- अष्टांग योग के अन्तर्गत प्रत्याहार पाँचवें स्थान पर आता है। इसके पश्चात् धारणा, ध्यान और समाधि की अवस्थाएँ आती है। ईश्वरीय शक्ति को ग्रहण करना, धारण करना ही उक्त तीनों साधनाओं का उद्देश्य है।

नए आहार को ग्रहण करने के पूर्व पहले खाए हुए को निकालना-बाहर करना पड़ता है। बिना पेट खाली हुए नये आहार के खाने-पचाने की क्षमता ही नहीं आती। इसे खाली करने की क्रिया को प्रत्याहार कहा जाता है। लेकिन अध्यात्म क्षेत्र में पेट की जगह मन को खाली करना पड़ता है। मन में नाना प्रकार के विचार, विकार तथा उनके अवशिष्ट घर बनाए बैठे होते हैं, इन्हें निकालने की साधनात्मक प्रक्रिया को प्रत्याहार कहा जाता है।

वस्तुत: आँख, कान, नाक आदि इन्द्रियाँ क्रमश: सहज रूप में विषयों को देखने, सुनने, सूँघने आदि के लिए लालायित रहती हैं, जिसकी पूर्ति होते-होते मन बहिर्मुखी हो जाता है, जो साधना में सर्वाधिक बाधक है। अतएव मनद्वारा ही इन्द्रियों को विषयों में से प्रत्याहरित किया जाए-वापस खींचा जाए। इसके लिए साधक को पूरी ईमानदारी एवं कठोरता से अपने मन व अन्त:करण में जड़ जमाए बैठे गुण, स्वभाव, संस्कार तथा विचारों को अच्छी तरह टटोलना, ढूँढ़ना चाहिए। इनमें से कितने भले और कितने बुरे हैं, उनका वर्गीकरण भी करते चलना चाहिए। भले को बढ़ावा और बुरे को दूर करना 'प्रत्याहार' का प्रयोजन है। धीरे-धीरे अपने सभी प्रकार के कुसंस्कारों को जो आदतों के रूप में आपके स्वभाव का एक अंग बन गए हैं, निकाल बहार करें। कुसंस्कारिता कुछ हद तक प्रारब्ध जनित भी हो सकती है; किन्तु अधिकतर कुसंस्कारिता, कुसंगवि तथा पारिवारिक एवं सामाजिक परिवेश के कारण ही बढ़ती पल्लवित होती देखी जाती है।

प्रत्याहर साधना पद्धति

प्रत्याहार साधना के लिए किसी एकान्त शान्तप्रिय स्थान या पूजा स्थली पर बैठकर एक निर्धारित चिन्तन का क्रम चलाएँ। चिन्तन का क्रम ऐसा रखें कि आप आकाश के नीचे अकेले बैठे हैं, अन्य कोई पदार्थ दूर-दूर तक नहीं है। यह ध्यान धीरे-धीरे दृढ़ होने लगे, तब आप अपने अन्दर से आत्म प्रकाश की किरणें निकलने की भावना करें, कि ये किरणें निकल कर कुछ दूर तक चारों ओर प्रकाश का एक घेरा बना रही है। इस घेरे की एक बाउण्ड्री बना लें और अपने को इसके मध्य बैठा पूर्ण सुरक्षित अनुभव करें। कोई भी अन्य वस्तु या विचार तक इस घेरे के अन्दर प्रवेश नहीं कर पा रहे हैं। आप स्वयं सूर्य के समान अकेले तेजस्वी बने बैठे हैं। यह भावना दृढ़ करना चाहिए।

उपरोक्त चिन्तन कुछ दिन चलाने पर जब परिपक्वता प्रतीत होने लगे, तब अपने मन के कुविचारों, कुसंस्कारों, बुरी आदतों को अपने द्वारा निर्मित अभेद्य घेरे की बाउण्ड्री के बाहर खड़ा देखें और चिन्तन करें कि आपके अन्दर की सभी बुराइयाँ-अवांछित विचारणाएँ निकलकर बाहर चली गयी हैं और पुन: अन्दर प्रवेश नहीं पा रही हैं। अब आप इस पूर्ण सुरक्षित कवच के अन्दर पूर्ण प्रकाश स्वरूप या शुभ्र स्फटिक के रूप में निर्मल-बेदाग बैठे हैं, इस भावना को और प्रगाढ़ करते जायें। धीरे-धीरे अपने द्वारा निर्मित इस प्रकाश के घेरे को बढ़ाते जाएँ। उसे यहाँ तक बढ़ाएँ कि उस घेरे के बाहर फेंकी गई, निकाली गयी आपकी कमजोरियाँ-बुराइयाँ अदृश्य हो गयीं, अब न तो यह आपकी हैं और न आपका उनसे कोई सम्बन्ध ही है। हमेशा-हमेशा के लिए आप शुद्ध-पवित्र-निर्मल हो गए हैं। इसी ध्यान का नित्य प्रति अभ्यास करकते रहने से अवांछित आदतों, कुसंस्कारों से बचा जा सकता है। इसके बाद ही साधना के क्रम में अभीष्ट प्रगति दृष्टिगोचर होने लगेगी। इसे साधना के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। वासना, तृष्णा, अहंता, लोभ-मोह, ईषा-द्वेष जैसे निम्नस्तरीय विचार जो साधना में, ध्यान में, साधक का मन भटकाते हैं। इस साधना से उन्हें हटाया जा सकता है और साधक साधना के पथ पर अग्रसर होता रह सकता है।

धारणा- शाब्दिक दृष्टि से धारणा मान्यता विशेष को कहा जाता है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से धारणा का अर्थ-इष्ट के चिन्तन मनन में विशेष रूप से पारंगत होने को कहा जाता है। प्रारंभ में इष्ट के स्वरूप, गुण, कार्य आदि का ध्यान में जो काल्पनिक चिन्तन किया जाता है उसे धारणा कहा जाता है। इसमें

जितनी दृढ़ता एकाग्रता आती जाती है उससे धारणा की सिद्धि होती जाती है। **ध्यान-** गहरी धारणा ही ध्यान रूप में परिणित हो जाती है। ध्यान साकार एवं निराकार दोनों प्रकार का होता है। साकार ध्यान में इष्ट की मूर्ति या चित्र का ध्यान किया जाता है जबकि निराकार ध्यान में प्रकाश का ध्यान किया जाता है किन्तु समझदार साधक प्रकाश के स्रोत अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा अथवा दीप ज्योति का ध्यान करना ज्यादा अच्छा समझते हैं और इससे उन्हें सफलता भी जल्दी मिल जाती है। कालान्तर में ध्यान गहरा होने पर वही समाधि रूप में परिणित हो जाता है।

ध्यान साधना

ध्यान में ॐॐॐकार साधना विज्ञान विशुद्ध रूप से क्रिया प्रधान है। ध्यान शक्ति के बल पर कोई भी साधक शीघ्राति शीघ्र इस साधना में आगे बढ़ सकता है। श्रद्धा एवं समर्पण भाव से किए गए ध्यान के चमत्कारिक परिणामों के सम्बन्ध में परम पूज्य गुरुदेव ने वाङ्मय सं. 13 पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियों के वर्णन में लिखा है-

''ध्यान वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके अनुसार किसी वस्तु की स्थापना अपने मन क्षेत्र में की जाती है। मानसिक क्षेत्र में स्थापित की हुई वस्तु हमारे आकर्षण का केन्द्र बनती है। इस आकर्षण की ओर मस्तिष्क की अधिकांश शक्तियां खिंच जाती है। फलस्वरूप एक स्थान पर उनका केन्द्रीयकरण होने लगता है। चुम्बक पत्थर अपने चारों ओर बिखरे हुए लौह कणों को सब दिशाओं से खींचकर एक केन्द्र बिन्दु पर एकाग्र करता है, बिखरी हुई चित्त वृत्तियां एक जगह सिमट जाती है।''

नये साधकों को निकलते हुए सूर्य या दीपक के ध्यान से धारणा सिद्ध करायी जाय गहरी धारणा ही ध्यान है तथा गहरा ध्यान ही समाधि कही जाती है।

ऐसे साधक, जिन्हें ध्यान करने की विधि नहीं ज्ञात है, वह उगते सूर्य को आकाश में पाँच-दस सेकण्ड देखकर आँखें बंद कर लें, सूर्य को आकाश में उसी स्थान पर देखने की कल्पना करें। जब मन हट जाये, तो पुनः सूर्य को देखकर फिर आंखे बंद कर लें। यह अभ्यास पाँच-सात दिन करने के बाद आकाश में सूर्य पर मन स्थिर होने लगेगा, तब उसी सूर्य को आकाश की जगह अपने दोनों भौहों के मध्य लगभग आधा इंच की गहराई में दोनों भृकुटियों के मध्य जहाँ महिलाएँ बिन्दी लगाती हैं उसके अंदर की तरफ स्थित होने की

भावना करें। धीरे-धीरे यही ध्यान दृढ़ होता जायेगा। बीस-पच्चीस दिन बाद सूर्य देखने की आवश्यकता नहीं रहेगी। ध्यान स्वयं लगने लगेगा। जहां पर उदीयमान सूर्य के दर्शन संभव न हो, वहां पर तेल या घी का दीपक अपने सीने की ऊँचाई पर जला कर रख लें। लगभग तीन-चार फुट की दूरी पर बैठ जाएँ और सूर्य में की गयी ध्यान प्रक्रिया को दीपक के माध्यम से पूरी कर लें। किसी चित्र का भी ध्यान किया जा सकता है। ध्यान करते समय प्राय: साधक का मन अपने दैनिक जीवन के कार्यों की ओर भागता है। अत: वह जबरदस्ती रोकने से रूकेगा भी नहीं। इसके लिए एक सफेद कागज और पेन पास में रख लें, ध्यान में बैठने से पूर्व ऐसे कार्यों एवं विचारों को संक्षेप में लिखकर अपने इष्ट के समझ चरणों पर रख दें, परन्तु ॐॐॐकार के साधक परम पूज्य गुरुदेव व वन्दनीया माता जी के चरणों में (चित्र के नीचे) दबा दें और भावना करें कि हमने समस्या लिखकर दे दी है, उन्होंने उन विचारों को हमारे पास आने से रोक दिया है। इस प्रकार का अभ्यास लगातार करते रहने से कुछ समय पश्चात् अनावश्यक विचारों का आना रूक जायेगा।

नोट:- ध्यान से उठने के बाद साधक को 15-20 मिनट तक लेटकर शिथिलीकरण मुद्रा में पड़े रहना चाहिए इससे साधना से प्राप्त ऊर्जा साधक के अन्दर ही समाहित हो जाती है।

समाधि:- मुख्यरूप से समाधियाँ तीन प्रकार की होती हैं। इन्हीं के भेद करके कुछ साधक विद्वानों ने कई अन्य प्रकार की समाधियों का वर्णन किया है।

मुख्य समाधियां :-

(1) सविकल्प भाव की अधिकता में कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी प्रसन्न मुद्रा में निमग्न रहता है। इस अवस्था में चेतना स्तर पर परिवर्तन होता रहता है।

(2) निर्विकल्प समाधि-इसे जड़ समाधि भी कहा जाता है। इस अवस्था में साधक की चेतना पूर्ण रूपेण एकाग्र होकर अपने इष्ट के विभिन्न स्वरूपों का दर्शन करता है। इस अवस्था में कोई भी साधक अधिक से अधिक इक्कीस दिन ही जीवित रह सकता है। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के अनुसार 21 दिन के बाद जड़ समाधि वाला व्यक्ति शरीर त्यागकर देता है।

(3) असम्प्रज्ञात समाधि- इस अवस्था में साधक की चेतना का लोप ही जाता है और वह पागल सा दिखाई पड़ता है। उसके चलने फिरने खाने-पीने का ढंग बिल्कुल भिन्न हो जाता है। अच्छे और गन्दे का भेद नहीं कर पाता। खाद्य-अखाद्य

कुछ भी खा लेता है। ऐसी अवस्था में कुत्ता-बिल्ली पशुओं को दी गई रोटियाँ तक उन्हीं के साथ मिलकर खा लेता है। वह पशु भी उसका विरोध नहीं करते। देखने में पागल सा दिखने पर भी वह परम ज्ञानी होता है। सियाराम मय सब जग जानी की भावना उसमें साकार रूप धारण कर लेती है।

द्वितीय चरण

मानवी काया में समाहित तीन कलेवर

मनीषियों ने मानवी काया के अन्दर सन्निहित आत्म सत्ता के ऊपर तीन परिधान चढ़े हुए पाया है। इसकी बाह्य और दृश्य परत को स्थूल शरीर के रूप में जाना जाता है। इसे स्पर्श किया जा सकता है। यही शरीर सारे सांसारिक कार्यो का संचालन करते हुए दृष्टिगत होता है। दूसरा इसके अन्तराल में छिपा सूक्ष्म शरीर है। यह प्राणमय है। शरीर त्याग के पश्चात् इसे कुहासे के रूप में निकलते हुए विज्ञानियों ने उसका फोटोग्राफ भी ले लिया है। शरीर के चारों ओर तेजोवलय के रूप में यही शरीर परिलक्षित होता है। तीसरा है कारण शरीर। प्रेरणा, आकांक्षा मान्यताएं, भाव सम्वेदना इसी शरीर से सम्बन्धित होती है। अन्त:करणचतुष्टय का समुच्चय-मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का समुच्चय इसी शरीर से सम्बन्धित है। यह शरीर भाव प्रधान है।

जीव जन्तु, पशु-पक्षी यह सब स्थूल शरीर प्रधान प्राणी माने जाते हैं। मनुष्य अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त विचारणा, चिन्तन, मनन द्वारा स्वाध्याय इत्यादि के कार्यकर्ता है। वह सब सूक्ष्म शरीर की परिधि में आते जाते हैं। इसका केन्द्र मन है। मानसिक ललक लिप्सा मनुष्य को कभी चैन से नहीं बैठने देती लोभ मोह की पूर्ति हेतु वह अपना ठाठ-बाट बढ़ाता है। सार्वजनिक प्रदर्शन कर समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त करना चाहता है। अपने को हर तरह से श्रेष्ठ सिद्ध करने का हर हथकण्डा अपनाता है। तब यह भौतिकता की ओर आकर्षित करता है। किन्तु चिन्तन मनन, विचारणा और क्रिया कलाप जब बहुजन हिताय हो जाते हैं तब वही कार्य आध्यात्मिकता की श्रेणी में माने जाते हैं।

कारण शरीर भाव सम्वेदना का क्षेत्र है। पशु पक्षी जहाँ अपना निजी स्वार्थ ही पूरा करते हैं वहीं मनुष्य में मैत्री, करुणा, दया, परोपकार, सेवा ऐसे अनेक भावनापूर्ण उदार चिन्तन प्रस्फुटित होने लगे तब समझना चाहिए कि इस व्यक्ति का कारण शरीर विकसित होने लगा। आत्मवत् सर्वभूतेषु और वसुधैव

कुटुम्बकम की भाव सम्वेदना उठने लगे तब मनुष्य देवत्व की ओर बढ़ने लगता है। आदर्शवादी जीवन जीने की ओर बढ़ता है। ऐसे लोगों के अन्त:करण में सन्तोष एवं उल्लास निरन्तर झरता रहता है। इसी कारण उपनिषद्कार ने कहा है- ''हे मानव तू अपने सच्चे स्वरूप को पहचान और उसी के अनुरूप तू कार्य करता हुआ आगे बढ़।'' मानव की गरिमा इसी में है कि वह अपने अन्त:करण की भावनाओं को अपनी क्षमताओं को सदाशयता के सम्बर्धन में लगाए। इसी के आधार पर नर से नारायण, मानव से महामानव बनने का मार्ग प्रशस्त होता है। कारण शरीर इन्हीं आधारों पर विकसित एवं परिपुष्ट होता है।

शास्त्रों में वर्णित देवासुर संग्राम मूल रूप में कुण्डलिनी जागरण साधना का ही अलंकारिक स्वरूप है। दैत्यों का निवास पाताल लोक माना जाता है। पाताल पृथ्वी के नीचे माना जाता है। देवों का निवास स्वर्ग माना गया है। मानव देह में मूलाधार के नीचे पाताल अर्थत् असुरों का निवास और शरीर के ऊपरी भाग में स्थित सहस्रार को देवों का स्थान माना गया है। इसी को कर्म शक्ति और ज्ञान के प्रतीक के रूप में भी शास्त्रकारों ने प्रतिपादित किया है। कर्मशक्ति मूलाधार में तो ज्ञान शक्ति सहस्रार है। मूलाधार में कुण्डलिनी रूपी महाकाली का निवास स्थान है तो सहस्रार में ज्ञान स्वरूप भगवान शिव का निवास है। उन्हीं की छत्र छाया में देवताओं को शक्ति प्राप्त होती है।

देवासुर संग्राम में देवता सहस्रार रूपी स्वर्ग से उतरकर पाताल में निवास करने वाले असुरों पर आक्रमण करने को पहुंचते है। तब दैत्यगण भी सजग होकर युद्ध करने को उद्धत हो जाते हैं। इनका युद्ध स्थल समुद्र बनता है, शरीर में यह स्थान मूलाधार में है। युद्ध स्वरूप समुद्र मंथन उसी का अलंकारिक प्रतिवादन है। सुमेरू पर्वत को मथनी और शेषनाग को उसकी रई (रस्सी) कहा गया है। वास्तव में यह मथनी स्वरूप सुमेरू मूलाधार स्थित त्रिकोण कण है जिसमें कुण्डलिनी साढ़े तीन फेरे लगाकर लिपटी हुई है। मेरूदण्ड में स्थित इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ ही मथानी की वह रज्जु हैं जिनमें प्राणायाम द्वारा आरोहण अवरोहण की प्रक्रिया सम्पन्न कर कुण्डलिनी को जागृत करने की प्रक्रिया अपनाई जाती है।

समुद्र मंथन से प्राप्त चौदह रत्न वस्तुत: कुण्डलिनी जागरण के उपरान्त साधक को मिलने वाले अतुल वैभव एवं शक्ति के परिचायक हैं। इन शक्तियों के सदुपयोग करने वाले देवता और दुरूपयोग करने वाले भस्मासुर ऐसे राक्षस माने गए है। अध्यात्म के मार्ग पर बढ़ने वाले जिज्ञासुओं को धैर्यपूर्वक

श्रद्धा-विश्वास के साथ निरन्तर अभ्यास में लगा रहना पड़ता है। साधना काल में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद्, मत्सर ऐसे अनेकों दैत्यों से संघर्ष करना पड़ता है। जो साहसी धैर्य एवं विवेक पूर्वक इन दैत्यों से संघर्ष करने में सफल हो गया वह देवतुल्य पूज्य एवं वन्दनीय हो जाता है। उतावली बरतने वाले इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि के जाल में उलझ कर रह जाते हैं। इसी को देवों की पराजय और दैत्यों की विजय माना गया है।

साधनारूपी अरण्यमन्थन से मूलाधार में लिपटी कुण्डलाकार कुण्डलिनी अपने फेरे हटाकर फुफकार जब ऊपर उठती है, तब साधक के दबे कुचले कुसंस्कारों को चबा जाती है। परिणामस्वरूप साधक में ओजस्, तेजस् वर्चस्, की वृद्धि हो जाती है। अनेकों रिद्धियों, का स्वामी बन जाता है। इस प्रकार कुण्डलिनी जागरण की साधना को अपने अन्दर छिपी दैवी शक्ति को जगाने की साधना भी माना जा सकता है। इस साधना की सफलता से दैवी शक्तियां साधक के अधीन हो जाती हैं।

इस चरण में तीनों शरीरों की साधना का विज्ञान सम्मत प्रतिपादन किया जा रहा है। मानव शरीर को तीन खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम जन्मने, मरने वाला स्थूल शरीर जिसमें सर्दी-गर्मी का रोग व्याधियों का प्रभाव पड़ता है, दूसरा है सूक्ष्म शरीर जिसे मनोविज्ञान के ज्ञाताओं ने अचेतन मन की कार्य प्रणाली का केन्द्र माना है। रात्रि में सोते समय जब हम स्वप्न में दूर-दराज की यात्रा करते हैं। लोगों से सम्पर्क साधते हैं। भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को देखते हैं। तब हमारा स्थूल शरीर तो बिस्तर पर लेटा ही रहता है। किन्तु सूक्ष्म शरीर, शरीर से बाहर निकलकर जो कार्य करता है और दृश्य देखता है वह हमारा सूक्ष्म शरीर ही देखता, सुनता व कार्य करता है। तीसरा है कारण शरीर जिसे आत्मा नाम से सम्बोधित किया जाता है। स्थूल और सूक्ष्म से परे हमारी अन्तरात्मा होती है जिसे भारतीय ऋषियों ने आत्मा के रूप में जाना है। कारण शरीर इसी आत्मा को कहा जाता है। शास्त्रों में इसका आकार अंगूठे प्रथम पोर के बराबर बताया गया है। इसका केन्द्र सहस्रार है।

तीनों शरीरों की साधना में भी तीनों प्राणायामों-प्राणाकर्षण, लोभ-विलोम तथा नाड़ी शोधन को करते रहने से साधना में सफलता अपेक्षाकृत शीघ्र एवं आसानी से मिल जाती है। इस साधना में सोऽहम् प्राणायाम का विशेष महत्व है। अतः हम साधकों से अपेक्षा रखते हैं कि वह आसन प्राणायाम, मुद्रा, जप तथा ध्यान का अभ्यास करते रहेंगे। इनकी क्रियाओं को किसी एक चरण से बांधना

और उनकी उपयोगिता सीमित करना उचित नहीं है। इसी प्रकार आत्मबोध, तत्त्वबोध की साधना शक्ति संचार एवं प्राण संचार की साधना भी निरन्तर करते रहना चाहिए।

तीन शरीरों की साधना

इस साधना को ग्रंथि भेद साधना भी कहा जा सकता है। इसके लिए 1. स्वस्तिकासन, 2. खेचरी मुद्रा, 3. सोऽहम् प्राणायाम, 4. ॐॐ ॐकार मंत्र का जप व 5. सविता देवता के प्रकाश स्वरूप का ध्यान। यह पाँच क्रियाएँ सम्मिलित की गयी हैं।

स्वस्तिकासन:- यह आसन सामान्य सुखासन से मिलता जुलता है। इसके लिए सामान्य रूप से बैठकर बायें पैर का पंजा दाहिने पैर की पिण्डली और जंघा के बीच दबा लेना चाहिए तथा अंगूठा ऊपर निकला रहे। फिर दाहिने पैर के पंजे को बाएँ पैर की पिण्डली और जंघा के बीच दबाकर उसका भी अँगूठा ऊपर निकाल रखें। कमर, गर्दन सीधा करके बैठें। हाथ गोदी में अथवा घुटनों में रखें। साकार उपासक बाएँ हाथ की हथेली नीचे तथा दाहिने हाथ की हथेली उसके ऊपर रखकर बैठे। निराकार उपासकों के लिए हाथ घुटनों में रखना ज्यादा उपयुक्त होगा।

सोऽहम् प्राणायाम :- इस प्राणायाम के लिए स्वस्तिकासन में शांत मन: स्थिति में कमर व गर्दन सीधी करके बैठें। धीरे-धीरे गहरी श्वास खीचें। श्वास खींचते समय वायु की रगड़ से श्वास नली में सो शब्द का स्वर सुनाई पड़ता है। उस पर ध्यान केन्द्रित करें। वायु धीरे-धीरे बाहर निकाली जाय। वायु निकलते समय उसके घर्षण से निकलने वाली ध्वनि हम् पर केन्द्रित करें तथा इसके ध्यान के लिए मन कोश्वास की आती जाती गति के घर्षण से निकलने वाली ध्वनि सोऽहम् पर केन्द्रित करें तथा भावना करें कि सो के साथ परम पिता परमात्मा हमारे अंग-प्रत्यंग में प्रवेश कर रहा है। तथा हं ध्वनि के साथ भावना करें कि हमारे अन्दर विद्यमान अहंकार जनित विकारों का निष्कासन हो रहा है। यहाँ पर भावना और ध्यान को एक साथ करना होगा। इससे धीरे-धीरे सोऽहम् का ध्यान गहरा होता जायेगा और श्वास-श्वास से सोऽहम् की अनुभूति होने लगेगी। इस भावना मिश्रित सोऽहम् ध्यान से हमारे अन्दर परमात्मा तत्त्व बढ़ने की अनुभूति प्रत्यक्ष होने लगेगी।

जप:- तीनों शरीरों की साधना करते समय ॐॐ ॐकार मंत्र का मानसिक जप किया जाय। यदि स्वस्तिकासन का अभ्यास हो गया हो, तो जप काल में

स्वस्तिकासन में ही बैठना चाहिए। परन्तु यदि किसी को पूरे जपकाल तक स्वस्तिकासन में बैठ सकने में असुविधा हो, तों सुविधानुसार किसी भी सहज आसन में बैठकर जप किया जा सकता है।

जप के साथ में उठने वाली तरंगों का मनोयोग पूर्वक अवलोकन किया जाय और उन प्रकाश तरंगों को तीनों शरीरों के केन्द्र नाभिचक्र, हृदय चक्र तथा सहस्रार चक्र में प्रवेश होता अनुभव किया जाय। भावनापूर्वक ध्यान किया जाय कि मंत्र शक्ति से इन तीनों केन्द्रों में हलचल पैदा होती है। मंत्र की तरंगें इन केन्द्रों में प्रवेश करके उन्हें स्पन्दित एवं प्रकाशित करती हैं। सभी केन्द्र सविता देवता के स्वर्णिम प्रकाश से आलोकित हो रहे हैं। इससे सम्पूर्ण शरीर प्रकाश से सराबोर हो रहा है।

खेचरी मुद्रा- इसके लिए स्वस्तिकासन में कमर व गर्दन सीधी करके बैंठे। नेत्र हल्के से बन्द रखें। जिससे की बाहरी क्रिया कलाप दिखाई न पड़ें। अब जिह्वा को उलटा कर तालु में लगाएँ और आसानी से जहाँ तक पहुँच सके तालु को धीरे-धीरे सहलाएँ। इससे जो लार बनें, उसे थूकें नहीं बल्कि निगलते चले जायें। ध्यान जिह्वा की स्थिति पर ही जमायें रहें। किसी किसी को बीच में जम्हाई आ सकती है, तो जम्हाई के बाद पुनः जीभ को उसी स्थान में लगाकर ध्यान करें। यह साधना जप के बाद न्यूनतम 15 मीनट तक करें, यदि ज्यादा कर सकें, तो अच्छा ही है।

जिह्वा हमारी रसानूभूति प्रवृत्तियों की प्रतिनिधि है। उसे उलटने का अभिप्राय अधोगामी प्रवृत्तियों को उलटकर ऊर्ध्वगामी बनाना है, इसी प्रकार तालु से स्पर्श कराने का अभिप्राय मस्तिष्क स्थित अमृत-कलश, अमृत-निर्झर से उसे जोड़ना है। इस साधना से सांसारिक विकृत रसों की तरफ से मन हटकर ऊर्ध्वगामी हो जाता है।

तीनों शरीरों की ध्यान साधना

यह ध्यान प्रातः, मध्याह्न या सायंकाल जब भी किया जाय, उसके ध्यान का स्वरूप एक ही रहेगा। मुंह पूर्व की ओर करके साफ सुथरे आसन पर बैठें। सामान्य रूप से प्रातःकालीन स्वर्णिम सूर्योदय काल के सूर्य को ही सविता देवता कहा जाता है। यह सविता देवता ही ब्रह्म का प्रतीक माना गया है। ध्यान के समय नेत्र बन्द रखे जाते हैं तथा शक्ति के अधिष्ठाता सविता ब्रह्म देवता का ध्यान क्रिया जाता है- कि वही हमारा आराध्य उपास्य देव है, उसका ही चिंतन तथा बन्द नेत्रों से दर्शन करने का प्रयत्न किया जाता है। भावना की जानी चाहिए कि हम किसी निर्जन स्थान में एकान्त में बैठकर ध्यान कर रहे हैं और आँख

बन्द करके अपने इष्ट के स्वर्णिम स्वरूप का दर्शन कर रहे हैं।

स्थूल शरीर :- इसका प्रवेश द्वार नाभि है। इसी को नाभि चक्र कहा जाता है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र मिलकर ग्रंथियों में रुद्र ग्रंथि बनाते हैं। अत: स्थूल शरीर के जागरण की साधना में इसी चक्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तथा इसी में सविता देवता की किरणों को प्रवेश कराकर स्वाधिष्ठान एवं मूलाधार चक्र में आघात एवं प्रवेश का अनुभव किया जाता है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र मिलकर रूद्र ग्रंथि का निर्माण करते हैं। मणिपुर चक्र के साथ मिल कर स्थूल शरीर बनाते हैं।

इस ध्यान साधना का सर्वोत्तम समय प्रात:काल ही होता है। लगभग 15-20 दिनों तक लगातार प्रात:कालीन स्वर्णिम सूर्योदय का ध्यान करने से उसकी धारणा बन जाती है। उसके उपरान्त सुविधानुसार समय में परिवर्तन भी किया जा सकता है। लेकिन ध्यान पूर्व की ही तरफ मुँह करके बैठकर ही करना चाहिए। ध्यान किया जाय कि स्वर्णिम सूर्य की किरणें नाभि में सीधे प्रवेश करके नाभि के पीछे सुषुम्ना में अवस्थित नाभिचक्र को जागृत, उत्तेजित कर रही हैं। फलस्वरूप नाभि कमल की दसों पँखुड़ी खिल रही हैं। उनकी सुषुप्तावस्था समाप्त हो रही है। खिला हुआ पूरा कमल स्वर्णिम सूर्य रश्मियों को अवशोषित कर रहा है। इससे हमारा स्थूल शरीर स्फूर्तिवान, शक्तिवान बनता जा रहा है। पूरे शरीर की सभी नस नाड़ियों में नवीन प्राण संचार हो रहा है। फलस्वरूप हममें एक नया जोश, उत्साह पैदा हो रहा है।

सूक्ष्म शरीर :- इसका प्रवेश द्वार हृदय है। इसको अनाहद चक्र कहा जाता है। इसे विष्णु ग्रंथि का केन्द्र भी माना जाता हे। इसकी साधना के लिए सविता देवता की स्वर्णिम किरणों का हृदय चक्र में प्रवेश, उसका बेधन, उससे भावनाओं का जागरण, उदारता करुणा, संवेदना की भावनाओं का उभार अनुभव किया जाय। प्राणाकर्षण प्राणायाम से सूक्ष्म शरीर के विकास में विशेष सहायता मिलती है। मणिपुर और अनाहद चक्र मिलकर विष्णु ग्रंथि बनाते हैं।

ध्यान किया जाय कि सूक्ष्म शरीर के केन्द्र हृदय चक्र में अवस्थित 12 पंखुड़ियों वाला हृदय कमल स्वर्णिम सूर्य की किरणों के आघात से पुष्पित होता जा रहा है। उसकी प्रसुप्तावस्था दूर हो गई है और वह पूरी तरह पुष्पित तथा सुगंधित होता जा रहा है। फलस्वरूप सम्पूर्ण हृदय क्षेत्र प्रकाशित हो रहा हैं, हृदय चक्र का स्थान हृदय के पीछे सुषुम्ना में होता है। सूर्य की किरणें हृदय से प्रवेश कर हृदय चक्र तक पहुँचती हैं, हृदय चक्र में सक्रियता पैदा हो गई है। मानसिक

क्षेत्र में घुसी निम्नगामी विचारधारा नष्ट होकर उच्चस्तरीय आदर्शयुक्त विचारधारा परिपक्व हो रही है। चिन्तन में नवीनता तथा आदर्शवादिता की जड़ें मजबूत हो रही हैं। इस शरीर की साधना में प्राणाकर्षण प्राणायाम विशेष लाभदायक होता है। इस प्राणायाम के करते समय अन्तरिक्ष में विद्यमान प्राण कणों को अपने संकल्प बल से शरीर के रोम-रोम में, कण-कण में प्रवेश करते देखने की भावना करनी चाहिए। यह प्राण कण हमारे शरीर में प्रवेश कर हमारे चिन्तन क्षेत्र को भी प्रभावित करते हैं। परिणाम स्वरूप हमारा मानसिक क्षेत्र विकसित होता जा रहा है। हमारे अन्दर विद्यमान निम्न स्तर की चिन्तनधारा मिट रही है। उसका स्थान विवेक एवं मानसिक सन्तुलन लेता जा रहा है।

कारण शरीरः- इसका प्रवेश द्वार ब्रह्मरन्ध्र है। इसे सहस्रार चक्र कहा जाता है। ग्रंथियों में यह ब्रह्म ग्रंथि कही जाती है। ध्यान किया जाय कि स्वर्णिम सूर्य की किरणें ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर सहस्र दल कमल को प्रकाशित कर रही हैं। उसमें प्रवेश कर रही हैं। उसके परिणामस्वरूप सहस्त्र दल कमल में शीतल किरणें झरकर पूरे शरीर में फैल रही हैं। पूरा शरीर ब्रह्म तेज से ओत-प्रोत हो रहा है। इष्ट को इस प्रकार समर्पण करने की भावना करें कि हम सविता देवता से मिलकर एकाकार हो गए हैं। हमारे अंग प्रत्यंग में उनका अधिकार हो गया है और हमारी अपनी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई है।

कारण शरीर के अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा, सूक्ष्म शरीर के अधिपति भगवान विष्णु तथा स्थूल शरीर के अधियति भगवान शिव हैं। यह देवगण प्रत्येक मानव के शरीर में एक गाँठ के रूप में प्रसुप्त पड़े रहते हैं। परन्तु साधना द्वारा जब तीनों अग्नियाँ प्रज्जवलित कर ली जाती हैं तब उनकी ऊष्मा तीनों शरीरों के प्रसुप्त देवताओं को जागृत एवं सजग बना देती हैं। सामान्य रूप से जिन शरीरों की कल्पना तक नहीं की जाती उनके अधिष्ठाता दैव शक्तियों के जागृत एवं सक्रिय होने पर स्थूल शरीर से भी अधिक सक्रिय एवं सामर्थ्यवान होकर अपने-अपने क्षेत्र में अपनी प्रखरता का परिचय देते तथा साधक को निहाल कर देते हैं।

इसका प्रवेश द्वार ब्रह्मरन्ध्र है। इसे सहस्रार चक्र कहा जाता है। ग्रन्थियों में आज्ञा चक्र और विशुद्धि चक्र मिलकर ब्रह्म ग्रन्थि कही जाती है। ध्यान किया जाय कि स्वर्णिम सूर्य की किरणें ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर सहस्र दल कमल को प्रकाशित कर रही हैं। उसमें प्रवेश कर रही हैं। उसके परिणामस्वरूप सहस्र दल कमल से शीतल किरणें झरकर आज्ञाचक्र और विशुद्धि चक्र को विशेष रूप से

स्पन्दित एवं पुलकित कर रही हैं। इष्ट को इस प्रकार समर्पण करने की भावना करें कि हम सविता देवता से मिलकर एकाकार हो गए हैं। हमारे अंग प्रत्येक में उनका अधिकार हो गया है और हमारी अपनी स्वतंत्र सत्ता समाप्त हो गई है।
नोट- इन तीनों ध्यानों को न्यूनतम दस-दस मिनट तक करें धीरे-धीरे ध्यान लगने पर इनका समय बढ़ाया भी जा सकता है। प्रारंभि अभ्यास कुछ दिन कर लेने के उपरान्त तीनों शरीरों की ध्यान साधना एक साथ बड़ी सुगमता से चल पड़ती है। इसमें स्वर्णिम सूर्योदय की रश्मियों को सीधे सहस्रार में प्रवेश कराकर सुषुम्नामार्ग से क्रमशः हृदय चक्र तथा नाभि चक्र तक पहुँचाया जाता है। ध्यान से पहले नाभि चक्र अर्थात् स्थूल शरीर का फिर हृदय चक्र में अर्थात् सूक्ष्म शरीर का और अन्त में कारण शरीर के लिए ब्रह्मरन्ध्र, सहस्त्रासार में स्वर्णिम रश्मियों के प्रवेश की ध्यान भावना की जाती है। साधना के समय को तीन बराबर भागों में बाँटकर एक ही बैठक में तीनों शरीरों के जागरण का ध्यान किया जाता है।

नाद साधना

कारण शरीर का केन्द्र सहस्रार हैं और सहस्रार जागरण की सर्वोत्तम साधना है नाद साधना।

नाद योग की साधना :- ध्यान के समय जिनका मन ज्यादा उछल-कुद करता हो, ध्यान में स्थिरता न आती हो ऐसे लोगों के मन को एकाग्र करने में नाद साधना रामबाण औषधि का काम करती है। नये-नये साधना के अभ्यासी भी यदि इस साधना को संपन्न कर लेंगे तो उन्हें भी ध्यान में विशेष लाभ होगा।

नाद साधना की ध्यान विधि :- इस साधना के अभ्यास के लिए सुबह-शाम दिन डूबने के बाद से लेकर प्रातः सूर्योदय तक का समय उपयुक्त है, क्योंकि रात्रि में जन कोलाहल कम हो जाता है, जिससे बाहरी ध्वनियों के साधना कक्ष में प्रवेश की सम्भावना कम हो जाती है फिर भी यदि किसी के पास रात्रि का समय इस साधना के लिए न हो तो प्रातःकाल सूर्योदय से लगभग तीन घंटे के अन्दर ही यह साधना बन्द कमरे में की जा सकती है। इसके लिए उसे किसी ऐसे कमरे का चयन करना चाहिए जिसके आस-पास ज्यादा कोलाहल न होता हो। आसन दीवाल के सहारे या दीवाल के कोने में होना चाहिए। मसलन्द या तकिया आदि लगाकर आराम से शरीर ढीला करके बैठें। कोई चाहे तो सोफा या आराम कुर्सी पर भी बैठकर भी यह साधना कर सकता है। अब रूई को कार्कनुमा बनाकर अपने दोनों कानों को बन्द कर देवें। इतने पर भी यदि थोड़ी बहुत बाह ध्वनि सुनाई पड़ रही हो तो उसकी तरफ ध्यान न देना चाहिये। मन

को अपने अभीष्ठ लक्ष्य सहस्रार के ऊपर ले जाना चाहिये। वहाँ जो भी ध्वनि सुनाई पड़ें उसे बारीकी से सुनते रहना चाहिये। यदि किसी को प्रथम दो चार दिनों में कुछ भी सुनाई नहीं पड़े तो घबराना नहीं चाहिये। जैसे-जैसे सूक्ष्म कर्ण इन्द्रियाँ निर्मल होती जायेंगी, वैसे-वैसे ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने लगेगी। सर्वप्रथम शरीर के रक्त प्रवाह नस नाड़ियों की हलचलें सुनाई पड़ने लगेगी। इनमें रक्त प्रवाह की ध्वनि चलती रेल की धक-धक के समान तथा वायु के आने जाने की ध्वनियाँ बादल गरजने जैसे आवाज उत्पन्न करती हैं। उसी प्रकार शरीर के अन्दर विभिन्न रसों के पकने की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है। यह तीनों ध्वनियाँ शारीरिक गतिविधियों की होती है। इसी प्रकार मानसिक क्रियाओं की ध्वनियाँ मेघ वरसने के रूप में तथा मस्तिष्कीय हलचल की ध्वनि किसी जीवित प्राणी के श्वांस लेने जैसे सुनाई पड़ती है। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ते रहने से लगभग कुछ सप्ताह में इन शब्दों की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने लगती है जिससे कर्णेन्द्रियाँ निर्मल होने लगती हैं। और गुप्त ध्वनियों को ग्रहण करने में समर्थ होने लगती हैं। नाद श्रवण की योग्यता बढ़ने पर बंशी या शीटी की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती है। इनके सुनने में अत्यन्त आनन्द की अनुभूति होने लगती है और साधक को वैसा ही आनन्द प्राप्त होता है जैसे माँ अपने बिछुड़े बालक को यदि मिल जाती है तो वह आनन्द में भाव विभोर हो जाता है। साधना और आगे बढ़ने पर अन्त में ॐ ध्वनि सुनाई पड़ती है, तब साधक को सही जानकारी स्वतः मिलने लगती है। उसे किसी बाहरी पुस्तक या मदद की जरूरत नहीं रह जाती। परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने लिखा है कि शरीर और मन के पंच शब्दों से ऊपर उठकर वंशी की ध्वनि सुनकर उसमें आनन्दित होने की क्षमता मिल जाने पर साधक परकाया प्रवेश की न्यूनतम क्षमता अर्जित कर लेता है। वंशी की ध्वनि भली भाँति सुनाई पड़ने पर साधक को अनेकों गुप्त जानकारियाँ मिलने लगती हैं। परन्तु साधक को इन जानकारियों का दुरुपयोग करने पर उसका दण्ड भी भुगतान पड़ता हैं। अतः हमारी साधकों को नेक सलाह यही है कि साधना काल में प्राप्त जानकारियों का अपने गुरु या साधना मार्ग पर परामर्शदाता के रूप में जिसे आपने अपनाया है। उससे परामर्श लेने के बाद ही गुप्त जानकारियों को सार्वजनिक करें। नाद साधना के सम्बन्ध में विशेष सावधानी यह रखनी चाहिये कि जो साधक नाद साधना और बाह्‌ त्राटक एक ही बैठक में करना चाहते हैं उनके लिये आवश्यक परामर्श यह है कि पहले नाद साधना करें, उसके बाद उसी तारतम्य में उसी आसन पर बैठे हुए त्राटक

की साधना कर सकते हैं परन्तु त्राटक साधना के बाद तुरन्त नाद साधना न करनी चाहिये। यदि त्राटक के बाद नाद साधना करने की मजबूरी हो जाये तो दोनों के मध्य डेढ़ से दो घंटे का अन्तर रखना जरूरी है। जबकि नाद साधना के साथ-साथ त्राटक उसी तारतम्य में किया जा सकता है। इसलिये अच्छा होगा कि नाद साधना के बाद उसी आसन पर दीप ज्योति प्रज्जवलित कर बाह्य त्राटक का अभ्यास कर लिया जाये।

त्राटक दो प्रकार का होता है। एक बाह्य त्राटक दूसरा अन्तः त्राटक। बाह्य त्राटक का अधिकाधिक अभ्यास करके मैस्मरिज्म और हेप्टोनिज्म जैसी जादूगरी की क्षमता लोग अर्जित कर लेते हैं। परन्तु साधना क्षेत्र में दो से तीन महीने तक इस त्राटक का अभ्यास करके साधक अपने नेत्रों की चमक वे चेहरे में आकर्षण शक्ति प्रापत कर सकते हैं। जो उनके लोक व्यवहार में सहायक होती है।

बाह्य त्राटक का अभ्यास :- इसके लिये डेढ़ फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा सफेद कागज या पुट्ठा के मध्य में लगभग एक इंची व्यास के गोले आकार का काला गोला रंग लें। उसके मध्य में सरसों के बराबर सफेद बिन्दु बना लें। अब इस कागज या पुट्ठे को दीवाल में इतनी ऊंचाई पर चिपकायें कि गोला आपके आंखों के सामने पड़े। उससे लगभग चार फिट की दूरी पर बैठ कर गोले के अन्दर सफेद बिन्दु को एक टक देखें। इस समय मन में उठने वाले विचारों को दृढ़ता से रोकें और उस बिन्दु को अपलक दृष्टि से इस भावना के साथ देखें कि अपनी नेत्र ज्योति से उस सफेद बिन्दु में छेद सा हुआ जा रहा है। यह त्राटक तब तक किया जाये जब तक आँखों में खूब आंसू न आ जायें। आंसू आ जाने पर आंखों को गुलाब जल या गंगा जल से धोना चाहिये। इसके लिये बाजार में कांच की आंख में फिट होने योग्य कटोरी मिलती है उसमें गुलाब जब भर कर थोड़ी देर तक आंखों को डुबायें रखने से आंखों की बढ़ी हुई गर्मी शांत हो जाती है। दूसरे दिन पुनः उसी प्रकार अपलक नेत्रों से त्राटक का अभ्यास करें और अभ्यास के बाद गंगा जल या गुलाब जल से आंखों को शीतल कर लें। प्रतिदिन यह अभ्यास थोड़ा-थोड़ा बढ़ाते रहना चाहिये। यह त्राटक डेढ़ दो माह तक लगातार करते रहने से कामचलाऊ सफलता मिल जाती है। ज्यादा अच्छा हो कि बिना व्यवधान के यह अभ्यास करते रहें क्योंकि बीच में एक दिन का भी व्यवधन साधना को पूर्ण रूप से बाधित कर देता है। कुछ लोग सूर्य और चन्द्रमा में भी त्राटक करते हैं। पर हम अपने साधकों को इनमें त्राटक करने की सलाह नहीं देते

हैं क्योंकि चन्द्रमा लगातार एक ही स्थिति में नहीं रहता दूसरा सूर्य को अपलक दृष्टि से देखने से शारीरिक ऊष्मा बढ़ जाती हैं, जिससे साधकों की शारीरिक कठिनाईयाँ बढ़ सकती है। दीपक की जलती लव को अपनी दृष्टि के बराबर ऊँचाई में सामने रखकर यह त्राटक पहले बताये गये गोले के अभ्यास के समान किया जा सकता है।

अतः त्राटक :- यह त्राटक साधना क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये परमावश्यक माना गया है। इससे एकाग्रता बढ़ती है जो भौतिक जीवन के हर क्षेत्र में भी लाभकारी होती है।

अतः त्राटक का अभ्यास :- इसके लिए जिसके पास सूर्यदेव देखने की सुविधा हो वह प्रात:कालीन निकलते हुये सूर्य को जब किरणें नहीं निकल रहीं हो उसे 4-5 सेकेण्ड अपलक नेत्रों से देख कर आँखों को बन्द करके, बन्द आँखों से उस सूर्य को आसमान में उसी स्थान पर देखने का प्रयत्न करें। जब तक सूर्य की ललिमा बन्द आँखों में बनी रहे तब तक आँखों को न खोलें। जब कल्पना से सूर्य हट जाये तो पुनः आंखें खोलकर 4 से 5 सेकेण्ड तक सूर्य को देखकर पुनः नेत्रों को बन्द करके अन्तरिक्ष में उसी स्थान पर सूर्य को देखने का प्रयास करें। इस प्रयार में बार-बार आंखें तब खोला करें जब बन्द आँखों के सामने से सूर्य ओझल हो जाये। जैसे ही सूर्य में किरणें फूटने लगें। अभ्यास रोक देना चाहिये। पन्द्रह-बीस दिन लगातार यह अभ्यास करते रहने पर चार पाँच मिनट की अन्तः त्राटक क्षमता आ जाती है। उसके बाद चार-पाँच दिन तक सूर्य को देखकर उसे अपनी भृकुटी के मध्य में स्थिर करें, जब वह स्थिर होने लगे तब बाहर सूर्य को देखने की जरूरत नहीं पड़ती। कल्पना मात्र से सूर्य ध्यान में आ जाता है।

दूसरा अभ्यास दीपक जलाकर सीने की ऊँचाई पर रखकर उससे लगभग तीन फिट की दूरी पर बैठकर दीपक को पाँच सात सेकेण्ड देखकर आंखें बन्द कर लें और पहले के समान दीपक के ही स्थान पर बन्द नेत्रों से दीपक की ज्योति देखने का अभ्यास करें। जब मन दीपक से हटे तो पुनः दीपक देखकर बन्द आँखों से दीपके के स्थान पर दीपक को देखने का प्रयास करें। लगभग एक माह बाद दीपक देखकर बन्द आँखों से दीपक की ज्योति अपनी भृकुटी मध्य में स्थिर होने लगेगी। अब इस अभ्यास को बढ़ाते रहें।

तीसरा तरीका अपने गुरु या ईष्ट के फोटो का ध्यान करने का है। इसके लिये सामान्य प्रकाश में फोटो को पाँच सात सेकेण्ड तक भली प्रकार

देखने के बाद आँखें बन्द करके फोटो को उसी स्थान पर बन्द नेत्रों से देखने का अभ्यास प्रारम्भ कर देवें। जब फोटो से ध्यान हटे तो पुनः आँखें खोलकर फोटो देखकर पुनः नेत्र बन्द करके फोटो को उसी स्थान पर ही बन्द नेत्रों से देखें। लगभग एक माह के अभ्यास के बाद फोटो को देखकर उस चित्र को अपनी भृकुटियों के मध्य ध्यान करने लगें। कुछ दिन में ही फिर फोटो देखने की जरूरत नहीं रह जायेगी। और भृकुटियों के मध्य ध्यान प्रारम्भ करते ही चित्र आ जायेगा। अब इस ध्यान को साधना में बैठकर करने लगें। जब मन ध्यान से हट जाये तो कल्पना के आधार पर पुनः उस चित्र को ध्यान में लाएँ। धीरे-धीरे यह अभ्यास घन्टों का होने लगेगा। यदि साधक अन्तः त्राटक के बाद नाद साधना करना चाहते हों तो वह अन्तः त्राटक के बाद नाद साधना कर सकते है। इसमें हर्ज नहीं है किन्तु बाह्य त्राटक के बाद तुरन्त नाद साधना नहीं करनी चाहिए। डेढ़ घंटे के बाद कर सकते है।

तृतीय चरण

मानवी काया में कोश- कोश का एक अर्थ खजाना भी होता है। भारतीय ऋषियों मुनियों ने अपनी ध्यान की चरमावस्था में अपने अन्दर ही पाँच ऐसे कोशों (खजानों) की खोज कर लिया था, जिनका सही ढंग से जागरण करके मानव असीम वैभव का अधिकारी बन सकता है। इन कोशों की साधना से मानव आत्मकल्याण के मार्ग में आगे बढ़ते हुए भौतिक जीवन भी सुख समृद्धि भरा बना सकता है। इनकी साधना के कुछ नियम नीचे बताए जा रहे हैं। इनका समुचित ढंग से अभ्यास किया जाय तो कोशों का जागरण प्रारम्भ हो जाता है। इसकी पूर्णता पर तो आनन्द का अक्षय स्रोत ही हाथ लग जाता है।

पंचकोशी साधना

पंच कोश क्रमशः- अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनन्दमय-कोश हैं। अन्नमय कोश की साधना में आहार-विहर का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। आहार सात्विक तथा सुपाच्य होना चाहिए। कुधान्य न खाया जाय। कुधान्य से अभिप्राय बिना परिश्रम के अर्जित धन व उससे प्राप्त खाद्य सामग्री से है। इसीलिए अन्नमय कोश की साधना में एक ओर जहाँ परिश्रम से कमाया आंहार लेने का विधान है, वहीं भोजन बनाने पकाने और परोसने वाले की पवित्रता का भी ध्यान रखना होता है। यहाँ पर पवित्रता केवल शारीरिक या वस्त्रों को नहीं, अपितु साधक के आचरण व भावनाओं की पवित्रता भी आवश्यक मानी गयी है। इस संबंध में आर्य समाज के प्रमुख संत आनन्द

स्वामी से संबंधित घटना है कि वह एक बार अपने पुत्र रणजीत से मिलने जेल में गये थे। जेल में रणजीत ने उनसे बताया कि "पिताजी मैंने कल स्वप्न में देखा कि मैं अपनी माता को बाल पकड़ कर घसीट रहा हूँ तथा कमरे से निकाल कर आँगन में उसकी हत्या कर दिया है। तबसे मैं दु:खी हूँ।" आनंद स्वामी ने स्वप्न के पूर्व दिन में भोजन बनाने वाले कैदी की केस डायरी दिखाने का जेलर से आग्रह किया। उसमें उसके अपराध के विवरण में लिखा था कि उसने अपनी पत्नी को कमरे से सिर के बाल पकड़कर घसीटते हुए आँगन में लाया और वहीं उसकी हत्या कर दिया। इस अपराध में हाईकोर्ट से उसे आजीवन कारावास की सजा दी गई थी।

इस घटना से भोजन पकाने वाले की मन: स्थिति का भोजन करने वाले की मन: स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव की एक झाँकी मिलती है। इसलिए साधकों को आहार ग्रहण करते समय परिश्रम से कमाएं गये अन्न के साथ-साथ उसके सम्पर्क में आने वाले लोगों की पवित्रता को भी ध्यान रखना आवश्यक है। अनुभवी ऋषियों ने तो भण्डारों में भोजन करना, श्राद्ध का निमंत्रण, लड़कों की शादी में कन्या वाले के घर पर भोजन करना तक साधकों के लिए वर्जित किया है। इसी प्रकार चोरी-डकैती, घूस, बेईमानी आदि की कमाई करने वालों के घर पर भोजन या उनके द्वारा दिये गये दान को अपने लिए प्रयोग करना भी वर्जित है। ऐसी दान-दक्षिणा से प्राप्त धन को देव कार्य या समाज सेवा में ही लगा देना चाहिए। साधकों के लिए तो स्वउपार्जित ईमानदारी की कमाई खाने का ही विधान है।

आहार संयम

अन्नमय कोश की साधना के लिए अस्वाद व्रत का पालन करना यदि लम्बे समय तक न हो सके, तो सप्ताह में गुरुवार तथा रविवार को तो अस्वाद व्रत का पालन किया ही जाय। इसके साथ साधक यदि अस्वाद व्रत के दिन एक ही बार भोजन करें, तो और भी अच्छा है। सप्ताह में एक दिन का पूरा उपवास न हो सके, तो एक समय अस्वाद भोजन या फलाहार ले लिया जाय। यहाँ यह ध्यान रखा जाय कि व्रत का अर्थ उपवास है अर्थात् उस दिन भगवान के पास (साधना में) ज्यादा वास किया जाय अर्थात् बैठा जाय। भोजन एक समय लेने पर भी इतना न खाया जाए कि उससे दिन भर की पूर्ति कर ली जाय। उपवास के दिन भोजन लिया भी जाय, तो आधा पेट ही लेना चाहिए। साधकों के सामने एक प्रमुख समस्या यह खड़ी होती है कि बाहर जाने, सम्पर्क करने, प्रचार करने

के लिए जाने पर लोग आग्रहपूर्वक चाय, नमकीन, मीठा लेने का आग्रह करते हैं। ऐसे में पूज्य गुरुदेव ने साधकों के लिए अपने परिजनों के घर जाने पर दिन में केवल एक बार मात्र चाय लेने की छूट दे रखी है। घर-घर चाय या अन्य खाद्य पदार्थ लेने पर रोक लगाया है। शादी विवाहों में भी जाने पर मात्र एक कप चाय तक सीमित रखा जाय, नमकीन या मीठा को व्रत कहकर टाल दिया जाय। चाय भी दिन में एकाध बार ही ली जा सकती है। चाय भी बार-बार न पी जाय। साधकों को जीभ के चटोरेपन से भी बचना होगा अन्यथा रसनेन्द्रिय पूरी साधना को ही खा जायेगी। परिणाम वही रहेगा कि दिन भर माँगे तो दिया भर, रात भर माँगे तो दिया भर अर्थात् साधनात्मक प्रगति न होना। संक्षेप में कहा जाये तो अन्नमय कोश की साधना के लिए अधिकाधिक सात्विक और सीमित आहार ही ग्रहण किया जाय, ताकि अन्न के अनुरूप मन में भी सात्विकता जागे।

इससे स्पष्ट है कि पंच कोशीय साधना की क्रियात्मक साधना के साथ-साथ आहार-विहार की व्यवहारिक साधना को भी चलाना चाहिए। तभी पूर्ण सफलता की आशा करनी चाहिए। इसी प्रकार प्राणमय कोश की साधना में आहार संयम के साथ-साथ प्राणायाम (लोम-विलोम) का अभ्यास बढ़ाया जाना चाहिए। मनोमय कोश की साधना के लिए सत्संग, स्वाध्याय की विशेष आवश्यकता होती है। विज्ञानमय कोश तथा आनंदमय कोशों की साधना में ध्यान तथा समर्पण योग की साधना विशेष रूप से करनी पड़ती है।

पंचकोशों की साधना में वज्रासन, प्राणाकर्षण प्राणायाम, उन्मुदी मुद्रा, पाँच प्रणव युक्त ॐकार मंत्र का जप के साथ ध्यान का विधान निम्न प्रकार है-

१. आसन- पंचकोशी साधना में वज्रासन में बैठने का विधान है। यह आसन दृढ़ संकल्प तथा सशक्त लक्ष्य भेद का प्रतीक है। पूरी साधना में इसी आसन में बैठे रहना चाहिए। किन्तु यदि किसी साधक को इतने लम्बे समय तक इस आसन में बैठे रहने में कठिनाई हो, तो प्राणायाम तथा उन्मुदी मुद्रा के समय तो इस आसन में ही बैठे। शेष जप व ध्यान के समय सुविधानुसार किसी भी सहज आसन में कमर व गर्दन सीधी करके बैठा जाय, जिससे कि जप व ध्यान में आने वाली ईश्वरीय सहायता के मेरूदण्ड सुषुम्ना में प्रवेश करने में व्यवधान न पड़े।

२. बज्रासन - यह आसन दृढ़ संकल्प और लक्ष्य भेद के प्रति जागरूकता का भी प्रतीक है। इसके लिए घुटने मोड़ कर पैरों को पीछे की तरफ मोड़ करके दोनों घुटने भी आपस में मिले होने चाहिए। कमर व गर्दन सीधी रख कर बैठा जाय। हाथ सुविधानुसार घुटनों अथवा जंघों में भी रख सकते हैं।

प्राणाकर्षण प्राणायाम- पंचकोशों के जागरण की साधना करते समय वज्रासन में बैठकर इस प्राणायाम के करनेका विधान है पर यदि कोई साधक अस्वस्थावस इस आसन में बैठ सकने में असमर्थ हो, तो वह सुविधानुसार सहज रूप से पालथी मारकर कमर व रीढ़ सीधी करके बैठ सकता है, जिससे कि प्राण वायु का संचार सम्पूर्ण शरीर में समान रूप से हो सके। इस प्राणायाम के लिए मनोभूमि यह बनानी चाहिए कि हमारे चारों तरफ प्रकाश का सागर लहरा रहा है और हम उसमें मछली की तरह स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। इतनी मनोभूमि बन जाने पर धीरे-धीरे गहरी श्वांस खींचे और ध्यान करें कि श्वांस के साथ-साथ प्रकाश के सागर में घुले हुए प्राण के कण हमारे अन्दर प्रवेश कर रहे हैं।

इसके लिए सर्वप्रथम ध्यान यह किया जाय कि प्राण तत्त्व सुषुम्ना के माध्यम से नाभि चक्र तक पहुँच कर उससे टकराकर फुलझरी की तरह चारों ओर बिखर रहा है। उसके प्रकाश कण शरीर के समस्त अंग अवयवों में प्रवेश कर रहे हैं। उन्हें सभी अंग सोखते जा रहे हैं। परिणाम स्वरूप अंग अवयवों के अन्दर समाए हुए कलुषित तत्त्व अपना स्थान छोड़कर भाग रहे हैं और हमारा मस्तिष्क, पृष्ठ भाग, अधोभाग आदि शरीर के सभी आन्तरिक अवयवों में नवीन प्राणों का संचरण हो रहा है। यंह भाव जितना ही गहरा होगा, उतना ही अधिक साधक को लाभ मिलेगां।

तीसरे और अंतिम चरण में यह भावना की जानी चाहिए कि हमारे प्रत्येक रोम-रोम से श्वांस खींची जा रही है और पूरा शरीर दिव्य प्राणों से परिपूर्ण हो रहा है। हम आनंदित तथा प्रमुदित हो रहे है।

नोट :- इस प्राणायाम में श्वांस के प्रवेश करने और उससे अपने अन्दर के होने वाले क्रिया-कलापों पर ही ध्यान दिया जाता है। श्वांस निकलने को सहज रूप में ही होने दिया जाता है। अन्य प्राणायामों की तरह इस प्राणायाम में रेचक पर ध्यान नहीं दिया जाता।

३. उन्मुनी मुद्रा - पंचकोशी साधना में यह मुद्रा विशेष रूप में सहायक होती है। इसके लिए सहज रूप से कमर सीधी करके बैठें। नेत्र इस प्रकार बन्द करें कि हल्का सा प्रकाश दोनों पलकों के जुड़ने पर भी दिखाई पड़े। ध्यान उसी हल्के प्रकाश पर केन्द्रित करें। धीरे-धीरे भीतर बाहर प्रकाश अनुभव होने लगता है। इससे साधक की वृत्तिया अन्तर्मुखी होने लगती हैं। इस समय इन्द्रियों की तरफ से मन को हटाकर अन्दर की तरफ लगाना पड़ता है। अंतरंग शक्तियों का एकीकरण कर उन्हें सशक्त करना पड़ता है।

इस मुद्रा का अभ्यास करते समय वज्रासन में बैठने का विधान है किन्तु जिन्हें इस आसन में बैठने में असुविधा हो, वह सहज रूप से पालथी मारकर ही बैठें।

४. जप- पंचकोशों की साधना में पाँच प्रणव युक्त ओंकार मंत्र के जप का विधान है। पाँच प्रणव पाँचों कोशों को प्रभावित करते हैं। जप में इस पूरे मंत्र का जप किया जायेगा। ॐॐॐॐॐ ॐकार यह पूरा एक मंत्र हुआ। इस पूरे मंत्र का जप करने से हमारे सम्पूर्ण शरीर में उसकी तरंगें फैलती हैं। जिसके प्रभाव से पाँचों कोश एक साथ प्रकाशित और प्रभावित होते हैं और उनके प्रतिनिधि केन्द्र चक्रों में सन्निहित देव शक्तियाँ होती हैं।

ध्यान विधि - इस ध्यान के लिए हिमालय की तरफ मुँह करके बैठा जाय, जो साधक पूरे समय तक वज्रासन में बैठ सकें, वही वज्रासन में बैठें, अन्यथा सुविधानुसार किसी सहज आसन में बैठकर ध्यान करें जिससे कि पूरे ध्यान काल में हिलना डुलना न पड़े। मजबूरी वश हिले-डुले तो भी कम से कम। अब ध्यान करें कि हिमालय की सर्वोच्च चोटी जो बर्फ से ढ़की हुई है। उसके शीर्ष में कमल पुष्प के आसन पर परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य बैठे हुए हैं। ध्यान यह करें कि परम पूज्य गुरुदेव की दाहिनी हथेली से प्रकाश पुंज निकल रहा हे। जो सीधे साधक (हमारे) के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर सहस्त्रार होते हुए सुषुम्ना स्थित विशुद्धि, हृदय, मणिपुर तथा स्वाधिष्ठान चक्र तक पहुँच रहा हे। ध्यान रहे कि हिमालय स्थित परम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रेषित प्रकाश पुंज का सुषुम्ना में ही प्रवेश का ध्यान लाभदायक है, ध्यान करें कि परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य के आज्ञा चक्र से प्रकाश की किरणें निकल कर सीधे साधक के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर सहस्रार होते हुए सुषुम्ना ही प्रवेश का ध्यान लाभदायक है, विधान भी इसी का है। प्रकाश पुंज का सुषुम्ना मार्ग से स्वाधिष्ठान तक पहुँच जाने पर एक-एक करके क्रमशः अन्नमय कोश के प्रतिनिधि स्वाधिष्ठान चक्र प्राणमय कोश के प्रतिनिधित्व मणिपुर चक्र मनोमय कोश के प्रतिनिधि हृदय चक्र (अनाहत) विज्ञान मय के प्रतिनिधि विशुद्धि चक्र तथा आनंदमय कोश के प्रतिनिधि सहस्रार चक्र हैं, तक पहुँचता है।

ध्यान करें कि परमपूज्य गुरुदेव की दाहिनी हथेली से प्रकाश की किरणें निकल कर सीधे साधक के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर रही हैं। कमर व गर्दन सीधी रखें, जिससे कि शक्ति केन्द्र से आने वाली प्रकाश किरणें सीधे सहस्रार से सुषुम्ना में प्रवेश करके स्वाधिष्ठान तक पहुँचें। बीच में रीढ़ टेढ़ी मेढ़ी करने से या हिलने-डुलने

से उसके प्रवेश में व्यवधान पड़ता है। अत: साधक पत्थर के बुत के समान सीधे बैठकर केवल मानसिक ध्यान व भावनाओं में मन को नियोजित रखें। सभी कोशों के जागरण में प्रमुख भूमिका निभाने वाली क्रिया परक ध्यान धारणा की पृथक्-पृथक् विधि निम्न प्रकार हैं-

पंचकोशों का स्वरूप

काया में विद्यमान पाँच कोश पाँच शरीरों के रूप में भी माने जा सकते हैं।

(१) अन्नमय कोश - जिसे विज्ञान की भाषा में फिजिकल बॉडी का नाम दिया जाता है। इसके अन्तर्गत मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र आते हैं। इसे स्थूल शरीर की संज्ञा दी जाती है यह तथ्य है इसमें शल्य चिकित्सा भी की जा सकती है।

(२) प्राणमय कोश- इसे विज्ञानी इथरीक बॉडी का नाम देते हैं। इसके अन्तर्गत मणिपुर चक्र आता है।

(३) मनोमय कोश- इसे विज्ञान की भाष में एस्ट्रल बॉडी कहा गया है। इसका केन्द्र अनाहत् चक्र (हृदय स्थल) है।

(४) विज्ञानमय कोश- इसे कास्मिक बॉडी माना गया है। इसके अन्तर्गत विशुद्धि चक्र तथा आज्ञा चक्र का कुछ भाग आता है।

(५) आनन्दमय कोश - इसे काजल बॉडी कहा जाता है। इसके अन्तर्गत आज्ञा चक्र का विकसित भाग तथा सहस्त्रार चक्र ब्रह्मरंध्र का क्षेत्र आता है।

कोशों का ध्यान

५- पंचकोशों का ध्यान- पंच कोशों की साधना में ध्यान पांचों कोशों के केन्द्र, चक्रों में किया जाता है। यह चक्र क्रमश: स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र (हृदय चक्र) विशुद्धि चक्र तथा सहस्त्रार चक्र हैं। जो क्रमश: अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश तथा आनंदमय कोश का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कोशों के ध्यान में जितना समय लगाना हो, उसे पाँच बराबर भागों में बाँट लेना चाहिए। यह विभाजन मानसिक ही होता है। जैसे हमारे पास 30 मिनट का समय है, तो प्रत्येक कोश के ध्यान में लगभग 6-6 मिनट का समय लगाएं। इसके लिए एक सरल उपाय यह भी हो सकता है कि ध्यान क समय माला लेकर बैंठे और प्रत्येक श्वांस के साथ एक दाना खिसकाते चलें। 10-15 दिन के अभ्यास से फिर माला की तरफ ध्यान नहीं जायगा। श्वांस के साथ-साथ

उँगलियाँ दाने खिसकाती रहेंगी। प्रत्येक चक्र के ध्यान में एक-एक माला के जप का समय लगाएँ। इसमें कुछ असुविधा हो, तो अपनी सुविधानुसार कैसे भी समय विभाजित कर सकते हैं। यदि इस विभाजन में थोड़ा बहुत अन्तर रहता है, तो भी हर्ज नहीं है।

नोट- ऐसे साधक जो साकार उपासना पसन्द न करते हों उन्हें चाहिए कि वह उत्तर की तरफ मुँह करके बैठें और ध्यान मैं परम पूर्ज्य गुरुदेव का ध्यान न करके उत्तर की तरफ विराजमान हिमालय की बर्फिली चोटियों से प्रकाश पुंज को निकलता अनुभव करें और उसे अपने सहस्त्रार में प्रवेश कराकर क्रमशः सभी चक्रों में पहुँचता और उन्हें प्रकाशित करता अनुभव करें।

१- अन्नमय कोश का ध्यान- इसके ध्यान के लिए कमर, गर्दन सीधी करके हिमालय की तरफ मुँह करेक बैठें। बायाँ हाथ नीचे दाहिने हाथ की हथेली बायीं हथेली के ऊपर माला पकड़ना हो तो उसे इसी मुद्र में दाहिनी हथेली में रखकर उँगलियों व अँगूठा से पकड़ लेवें। हथेली में ही रखकर दाने टालते रहें।

ध्यान करें कि हिमालय की सर्वोच्च चोटी जो बर्फ से पूरी तरह ढकी है। उसके शीर्ष पर कमल पुष्प पर परमपूज्य गुरुदेव विद्यमान हैं। उनकी दाहिनी हथेली से प्रकाश पुंज निकलकर साधक के ब्रह्मरंध्र में प्रवेश कर क्रमशः साहस्रार, विशुद्धि, अनाहत, मणिपुर तथा स्वाधिष्ठान चक्र तक सुषुम्ना मार्ग से एक-एक करके प्रकाश पुँज नीचे पहुँचा। यथा-ध्यान करें कि गुरुदेव की हथेली से आ रही प्रकाश किरणें स्वाधिष्ठान (पेडू की सीध में अन्दर कमर के जोड़ पर रीढ़ के मिलन स्थल) में पहुँचकर उसे प्रकाशित कर रही है। अन्नमय कोश केन्द्र स्वाधिष्ठान चक्र है। अतः उसे शक्ति सम्पन्न बना रही है। उसमें दैवी शक्तियों का प्रवेश हो रहा है। इससे इस चक्र में पवित्रता, संयम, निष्ठा, सक्रियता की वृद्धि हो रही है। जितनी देर तक इस चक्र में ध्यान करना हो, इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत रहें। उसके बाद क्रमशः ऊपर के कोश (चक्र) में मन को ले जाएँ। जैसे स्वाधिष्ठान चक्र से मणिपुर चक्र में पहुँचकर अन्नमय कोश के ध्यान का समापन किया जाये।

"अन्नमय कोश की साधना के लिए आहार को अधिकाधिक सात्विक और सीमित बनाया जाय ताकि अन्न के अनुरूप मन में भी सात्विकता जागे।"

२. प्राणमय कोश (मणिपुर चक्र)- इस कोंश का केन्द्र नाभि चक्र है। जिसे मणिपुर भी का कहा जाता है। इसके लिए नाभि चक्र के सीध में पेट के अंदर सुषुम्ना में मन को लगाएँ। ध्यान करें कि 10 पंखुड़ियों वाला कमल प्रकाश पुंज

पड़ने से खिलने लगा। उसके ऊपर प्रकाश पुंज चक्रवात की तरह कमल को झकझोर रहा है। ध्यान करें कि इस क्रिया से, दैवी शक्तियों का प्रवेश प्राणमय कोश में हो रहा है। ध्यान करें कि प्राणमय कोश शक्ति से ऊर्जा से ओत-प्रोत हो रहा है। जिससे साधक में पराक्रम, साहस, उत्साह की उमंगे उठ रही हैं, परिणम स्वरूप वह प्रतिभावान बनता जा रहा है। यह ध्यान धारण जितनी गहरी होगी, साधक का उतनी ही मात्रा में साधक का प्राणमय कोश जाग्रत होता चला जायेगा इस कोश के जागरण से साहस, उत्साह तथा आत्मबल में वृद्धि होती है। कोश अग्निमय होने के कारण जठराग्नि भी विशेष रूप से सक्रिय हो जाती हैं।

''प्राणमय कोश के जागरण के लिए आन्तरिक साहस और पराक्रम को प्रखर करना पड़ता है। इसके लिए छोटे-छोटे, थोड़े-थोड़े दिनों के संकल्प करके उनकी पूर्ति हर हालत में करनी चाहिए। पूरा करने पर मनोबल बढ़ता और मनस्विता में निखार आता है। जैसे रामायण का गीता का नवान्ह पारायण सहज ही हो सकता है। इसकी प्रकार ॐॐ ॐकार अनुष्ठान भी चल पुस्तकालय, झोला पुस्तकालय जैसे उच्चस्तरीय परमार्थों को इतने दिन तक इतने समय तक चलाते रहने का व्रत लिया जा सकता है। इसी प्रकार श्रमदान, साधन दान देकर सत्प्रवृत्तियों को समाज में अग्रसर करने में योगदान दिया जा सकता है। अपने बच्चे के विद्यारम्भ से लेकर उपनयन, विवाह तक ही प्रतिज्ञा शान्तिकुंज में कराने का संकल्प लेना भी ऐसी ही व्रत शीलता के अंग हैं, जिनसे मनुष्य में दूसरों की तुलना में अधिक प्राण, अधिक साहस होने का परिचय मिलता है। शारीरिक एवं मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन करने से जल्दी सफलता मिलती है।''

(पं० श्रीराम शर्मा आचार्य)

३. मनोमय कोश- इस कोश का केन्द्र हृदय चक्र है। जिसे अनाहद चक्र भी कहा जाता है। इसका स्थान हृदय के सीध में मेरुदण्ड के मध्य पोले स्थान में होता है। इसके लिए मन को प्राणमय कोश से हटाकर हृदय चक्र (मनोमय कोश) में लाना पड़ता है। ध्यान करें कि परम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रेषित प्रकाश पुंज हृदय चक्र में शक्ति भ्रमर के रूप में, चक्रवात के रूप में कमल को झकझोर रहा है। जिससे 12 दल वाला हृदय चक्र, प्रस्फुटित प्रमुदित होता हुआ खिलता जा रहा है। भावना करें कि दैवी शक्तियाँ कोश (चक्र) में प्रवेश कर अपना प्रभुत्व जमाती जाती हैं। फलस्वरूप मनोमय कोश ऊर्जा से ओत-प्रोत हो रहा है। उसे खूब आलोकमय होने की भावना करें। इससे साधक की एकाग्रता

बढ़ती है। मानसिक दृढ़ता, संकल्पशक्ति का बढ़ना, स्थिरता तथा मानसिक संतुलन भी बढ़ता जाता है। साधक को आत्म-तृप्ति, आत्म संतोष की प्राप्ति होती है। साधक की कामनाओं की समाप्ति होती है अर्थात् वह आत्मकाम होता जाता है।

मनोमय कोश की साधना में अन्तर्द्वन्द्व को आमंत्रित करना होता है। अपने गुण, कर्म, स्वभाव, रीति-नीति एवं आदतों का कड़ी दृष्टि से नित्य निरीक्षण करना और जो अनुपयुक्ता भीतर घुसी हुई हो उसके विरूद्ध विद्रोह खड़ा करके कूड़े करकट की तरह बाहर फेंकना, उसके स्थान पर सत्प्रवृत्तियों को हठपूर्वक स्थापित करना। कुकल्पनाओं के उठते ही उनके विरूद्ध उच्च विचारों को भिड़ा देने में विलम्ब न करना, यही मनोमय कोश की साधना है।

मनोबल बढ़ाने के लिए सप्ताह में एक दिन कुछ व्रतों का भी पालन करना चाहिए। इन्हें एक प्रकार से अणु व्रत कहा जा सकता है। यथा (1) एक समय बिना नमक-शक्कर का भोजन और एक समय रस, दूध, छाछ आदि प्रवाही पदार्थो पर गुजारा करना। (2) किसी सुविधा के समय पर दो घण्टे का मौन रखना। उस समय में एकान्त में रहना। लिखकर या इशारों से भी बात न करना। इन दो घण्टों में आत्म-निरीक्षण, आत्म-सुधार, आत्म-निर्माण और आत्म-विकास के सम्बन्ध की परिधि में ही विचार करते रहना। अब या पिछली दिनों की तुलना में अगले दिनों अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की योजना बनाना और उसे कार्यान्वित करने के तौर-तरीके निर्धारित करना। मनोमय कोश इतनी साधना भर से क्रमश: अधिक तेजस्वी हो सकता है।

४. विज्ञानमय कोश- इसका स्थान मेरुदण्ड में कंठ के सीधे में सुषुम्ना के मिलन स्थल में विशुद्धि चक्र होता है। इस चक्र में 16 दल का कमल होता है। ध्यान करें कि परम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रेषित प्रकाश शक्ति प्रवाह सहस्रार से मेरुदण्ड मार्ग होकर इस चक्र पर पहुँचकर उसमें हलचल पैदा करता है। जिससे भँवर, चक्रवात बनकर कमल को झकझोर रहे हैं। ध्यान करें कि विज्ञानमय कोश, अग्निमय, ज्योतिर्मय हो रहा है। परिणामस्वरूप साधक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर अपने आत्मभाव का विस्तार कर रहा है। साधक सूक्ष्म जगत् में प्रवेश करने के योग्य बन रहा है। परोक्ष ज्ञान की प्राप्ति हो रही है। इस कोश की जाग्रति से साधक को दिव्य दृष्टि की सिद्धि प्राप्त होती है।

विज्ञानमय कोश से मोटा आशय प्राय: दूरदर्शी विवेकशीलता को इतना तेजस्वी बनाने से है कि स्वयं अकेले भी किसी मार्ग पर चलना पड़े, कोई

कार्यक्रम अपनाना पड़े तो उसमें कोई झिझक संकोच आड़े न आने पाये। अपने व्यक्तिगत जीवन में कितनी ही अवांछनीयताएँ घुसी बैठी होती हैं, और आदत का रूप धारण कर लेने पर उन्हें छोड़ना तो दूर उलटे अपनाये रहने का दुराग्रह जड़ जमाकर बैठा होता है। इसी प्रकार समाज में अनेकों कुरीतियाँ, मूढ़ मान्यताएँ अनीतियाँ, दुष्प्रवृत्तियाँ जड़ जमायें बैठी होती हैं। पर उन्हें देखते, सहते रहने पर वे भी अखरती नहीं और एक परम्परा के रूप में अचेतन मन उन्हें स्वीकार कर लेता है। विज्ञानमय कोश के जागरण में उपरोक्त गलत मान्यताओं को अस्वीकार कर आदर्शोन्मुख चिन्तन व मान्यताओं को अपनाना पड़ता है।

५- आनन्दमय कोश- इस कोश का केन्द्र ब्रह्मरंध्र- सहस्रार है। ब्रह्मरन्ध का स्थान मस्तिष्क में जो तलुआ (शिर पर पुलपुला भाग) होता है, उसे कहा जाता है। बच्चों में यह स्थान इतना कोमला होता है कि थोड़ा भी दबाव पड़ने से फट सकता है। बाद में अगल-बगल की हड्डियाँ बढ़कर इसे सुरक्षा प्रदान करती है। एक मान्यता के अनुसार बच्चों में प्राण का प्रवेश द्वार यही है। यहीं से जीव शरीर में प्रवेश करता है।

आनन्दमय कोश के जागरण की प्रक्रिया यह है कि हल्की-फुल्की, हँसती हँसाती जिन्दगी को जिया जाय। अनुकूलता-प्रतिकूलता के सन्दर्भ में आवश्यक उपाय तो किये जाय पर मनः स्थिति खिलाड़ी जैसी रखी जाय जो आये दिन हारते-जीतते रहने पर भी अपने मन को खिन्न उदिग्न नहीं होने देते।

बड़ों का कहना है कि अच्छी आशाएँ रखो और बुरी से बुरी सम्भावनाओं के लिए तैयार रहो। परिस्थितियाँ सदा अनुकूल ही बनी रहें, कभी प्रतिकूलताओं का सामना न करना पड़े यह सम्भव नहीं। दिन और रात की तरह हार-जीत का भी जोड़ा है। जो दोनों ही स्थिति में अपने को सन्तुलित रखे रहता है, उपार्जन के लिए प्रयत्नशील एवं उपलब्धियों के सदुपयोग के लिए सदा दूरदर्शिता भरे कदम उठाता है, उसे दोनों ही प्रकार की परिस्थितियाँ बड़े उपयोगी पाठ पढ़ा जाती है। दोनों का ही मनुष्य जीवन में अपना-अपना उपयोग है। यह मान्यता जो स्थिर सुनिश्चित कर लेते हैं, उनका आनंद किसी के छीने छिनता नहीं।

ध्यान करें कि हिमालय स्थित परम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रेषित शक्ति प्रवाह प्रकाश पुँज के रूप में ब्रह्मरंध में प्रवेश कर सहस्रार में हलचल पैदा करता है। जिससे सहस्रार की सहस्रों की पुंखुड़ियाँ खिल रही हैं। उनसे झिलमिल प्रकाश फूट रहा है। फल स्वरूप एक प्रकाश बिन्दु सहस्रार में दिखाई पड़ रहा है। इसके दर्शन से साधक को स्वर्ग की अनुभूति, परमशांति की अनुभूति होती

है। फलस्वरूप बंधन मुक्ति, ईश्वर-प्राप्ति, संतुष्टि, सत्-चित्-आनंद का अनुभव होता है। सहस्रार से प्रकाश की किरणें निकल कर पूरे शरीर में अंदर ही अंदर फैल रही है। अंग-प्रत्यंग को प्रकाशित करती व शीतलता प्रदान करती हैं।

नोट- जिन साधकों को परम पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रेषित शक्ति धारा ब्रह्मरंध्र के माध्यम से सुषुम्ना में प्रवेश करने में कठिनाई हो रही हो, उन्हें सीधे सभी चक्रों के सामने वाले भाग में यथा-पेडू, नाभि, हृदय तथा गले में इन सबमे सामने की तरफ से प्रकाश पुंज आता और प्रवेश करते हुए अनुभव करने का ध्यान करना चाहिए। इसी प्रकार सहस्रार के लिए भृकुटि के मध्य आज्ञा चक्र से प्रवेश करा कर सहस्रार में पहुँचने का ध्यान करना चाहिए। बाद में ध्यान धारणा में परिपक्वता आने पर ब्रह्मरंध से प्रवेश सरल हो जायेगा। जैसे सामने से टार्च की लाइट हमारे शरीर में पड़ रही है। फिर दूसरे चक्र में पड़ने लगी। पूज्य गुरुदेव द्वारा भेजे गये प्रकाश पुँज को इसी रूप में ध्यान करें।

चतुर्थ चरण

इस चरण में हम मानवीय काया में सन्निहित उन विद्युत केन्द्रों की जागृति करने की साधना लिख रहे हैं, जिसे परम पूज्य आचार्य पं० श्रीराम शर्मा ने अपने जीवनकाल में अपने अनुयायियों को कराया और बताया था। उन्हीं साधनाओं में यह चक्र जागरण की साधना भी एक है। हमारे अन्दर विद्यमान षट्चक्र (वास्तव में आठ चक्र) ही वह ईश्वर प्रदत्त दैवी विद्युत केन्द्र हैं जिनको जागृतकर सशक्त कर लेने से प्रकृति के अन्तराल में सन्निहित विभिन्न शक्तियों को ऋषि मुनियों ने हस्तगत करने में सफलता प्राप्त किया था। यौगिक क्रियाओं द्वारा इन चक्रों को आज भी जागृत किया जा सकता है। मानव शरीर में मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक चक्र एवं उपचक्र तथा उपत्तिकाओं का जखीरा भरा पड़ा है। इनमें प्रकृति प्रदत्त शक्तियां समाहित हैं। चक्रों के जागरण की साधना मूलरूप से कुण्डलिनी जागरण की प्रारम्भिक साधना है इन्हें समुचित तरीके से जागृत कर लेने पर कुण्डलिनी का जागरण स्वतः प्रारम्भ हो जाता है। तीनों शरीरों की साधना ही या चक्र वेधन अथवा कुण्डलिनी जागरण की साधना या पंचकोशी।

इन सभी साधनाअें में 1. आसन, 2. मुद्रा, 3. प्राणायाम, 4. तप तथा 5. ध्यान की कुल पाँच क्रियाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की है। अतः साधक जिस समय जो साधना प्रारंभ करें, उन्हें उन दिनों उसके अंतर्गत की जाने वाले आसन,

मुद्रा, प्राणायाम, जप तथा ध्यान को विशेष रूप से अपनाना पड़ेगा। परंतु प्राणाकर्षण प्राणायाम, नाड़ी शोधन प्राणायाम और लोम-विलोम प्राणायाम पूरी तरह बंद नहीं करना चाहिए। वह पूर्ववत चलाते रहें।

मानव शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान चक्रों के जागरण हेतु नियमित रूप से प्राणायाम ध्यान जप के अतिरिक्त पंच कोशों के अनावरण की उच्चस्तरीय साधना भी करनी पड़ती है। वैसे सामान्य रूप से जप व ध्यान किया जाता रहे तो भी शनैः शनैः चक्रों का जागरण स्वतः प्रारंभ हो जाता है। पर यदि कुण्डलिनी शक्ति को अभीष्ट मात्रा में अर्जित करने की अभिलाषा हो तो उच्चस्तरीय साधना विज्ञान को अपनाने की आवश्यकता होती है। यह साधनाएं कुछ कठिन तो है पर असंभव नहीं। इन्हीं साधनाओं को सम्पन्न कर हमारे ऋषि इन्द्र जैसे सामर्थ्यवान, कुबेर ऐसी सम्पन्नता और देवों जैसे त्रिकाल दृष्टा की सिद्धियां हस्तगत करने में सफल हुए थे।

चक्र जागरण की साधना में प्राण बल, मनोबल तथा आत्मबल की जिस शक्ति की आवश्यकता पड़ती है उसकी पूर्ति ब्राह्माण्ड में व्याप्त प्रचुर प्राण शक्ति के आकर्षण से की जा सकती है। इसके लिए प्राणाकर्षण प्राणायाम ही वह माध्यम है जिसकें सहारे साधक आवश्यक प्राण शक्ति का आकर्षण कर अपना आत्म बल बढ़ा सकता है। ध्यान पूर्वक लोम-विलोम तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम करते रहने से सुषुम्ना में मन प्रवेश कर जाता है। परिणाम स्वरूप चक्र जागरण की साधना सरलता से सिद्ध हो जाती है।

प्राणाकर्षण प्राणायाम- अभी तक जिन साधकों ने प्राणाकर्षण प्राणायाम न्यूनतम 15 मिनट प्रतिदिन न किए हों, उनमें हो सकता है, आत्मबल कम हो और दीर्घकालीन कठोर साधना का क्रम न चला पाएँ। अतः ऐसे उत्साही साधकों को चाहिए कि प्रातः बिस्तर से उठते ही प्राणाकर्षण प्राणायाम कम से कम आधा घण्टे तक जरूर करें। इससे 6-7 माह में साधना करने लायक आवश्यक न्यूनतम आत्मबल मिल जाएगा। इस प्राणाकर्षण प्राणायाम को जीवन पर्यन्त अपनाएं रहने से साधक कठिन से कठिन सांसारिक परिस्थितियों का सामना करने योग्य तथा साधना क्षेत्र में किसी भी स्तर की साधना के लिए पूर्ण सामर्थ्य अर्जित कर लेता है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम- जिन साधकों ने साल दो साल 10-15 मिनट तक नाड़ी शोध प्राणायाम कर लिया हो, उन्हें अब इस चरण में केवल एक नाड़ी शोधन प्राणायाम प्रतिदिन करने की आवश्यकता है। किन्तु जिन्होंने इतने नाड़ी

शोधन पहले न किए हो, उन्हें 15 मिनट तक नाड़ी शोधन प्राणायाम करना अनिवार्य है, क्योंकि इसके बिना सुषुम्ना में जन्म-जन्मान्तर की भरी विषक्ता दूर नहीं होती और जब तक सुषुमना रूपी राजमार्ग पूरी तरह स्वच्छ नहीं होता, तब तक महाशक्ति कुण्डलिनी का उर्ध्वगमन संभव नहीं है। वैसे दीर्घकालीन लोम-विलोम प्राणायाम से भी यह सफाई हो सकती है, किन्तु इसमें समय ज्यादा लगता है। इसलिए ॐॐॐकार के साधक को नाड़ी शोधन प्राणायाम के सरल तरीके को सर्वप्रथम अपनाना चाहिए। इसकी विधि प्रथम चरण में बताई जा चुकी है।

लोम-विलोम सूर्यवेधन प्राणायाम- प्रथम चरण में इस प्राणायाम को यदि 45 मिनट तक नियमित रूप से न करते रहे हों, तो न्यूनतम 45 मिनट या इससे अधिक जितनी देर तक संभव हो करना चाहिए। ध्यान रहे यह प्राणायाम मनोयोगपूर्वक जिनती अधिक मात्रा में किया जाएगा, उतनी ही जल्दी चक्रों का जागरण, तदुपरान्त कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। नाड़ी शोधन तथ लोम-विलोम प्राणायाम करते समय तीनों बन्धों को लगाते रहना चाहिए। इससे साधना में शीघ्र सफलता मिलती है। कोई भी प्राणायाम करते समय मन को वायु के साथ जोड़कर रखना चाहिए। जहां तक नाड़ी शोधन तथा लोम-विलोम प्राणायामों का प्रश्न है, इनका अभ्यास करते समय ध्यान विशेष रूप से इड़ा, पिंगला तथा दोनों के मध्य विद्यमान सुषुम्ना नाड़ी पर ही जमाए रखना पड़ता है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना रीढ़ के अंतिम छोर तक ही जाती है जब कि सुषुम्ना से निकलकर ब्रह्म नाड़ी मूलाधार स्थित कूर्म में लिपटी होती है। जो थोड़ा सा आगे और अन्दर है। इसकी सविस्तार विधि प्रथम चरण की साधना में लिखा जा चुका है लोम विलोम प्राणायाम गर्मी के दिनों में एक-एक के क्रम से प्रतिदिन के हिसाब से घटाकर कम कर लेना चाहिए। क्योंकि प्राणायाम से शरीर में ऊष्मा बढ़ती है। ग्रीष्मकाल में यह ऊष्मा ज्यादा बढ़ने से साधक को शारीरिक कष्ट हो सकता है। शरीर में खुशकी, खुजली जैसे कष्ट अनुभव होने लगते हैं।

मानवीय काया में चक्र एवं उनकी साधना

सोऽहं जप- इस चरण में मंत्र जप के पूर्व एक माला सोऽहं मंत्र का जप ध्यान के साथ किया जाय। श्वांस खींचते समय सोऽहं तथा छोड़ते समय वायु के आवागमन में घर्षण होने वाले स्थान पर ध्यान लगाया जाय। एक श्वांस के आवागमन के साथ माला का दाना खिसकाते चले। इस प्रकार 108 बार सोऽहं मंत्र का जप (अजपा जप) पूरा कर लें। इसमें 10-12 मिनट का समय लगाया

जाय। तदुपरान्त आज्ञा चक्र में या उससे पहले दोनों भौहों के मध्य में अन्दर की तरफ लगभग आधा इंच गहराई में ध्यान लगाकर शेष ॐॐॐकार स्वरुपाय विद्महे महाकालाय धीमहि तन्नः श्रीरामः प्रचादयात्' का जप कर लें। इसके बाद एक माला महाशक्ति मंत्र ॐॐॐकार स्वरुपाय विद्महे महाशक्त्यै धीमहि तन्नो भवगती प्रचादयात्' इस मंत्र का जप कर लें। महाकाल का बीज मंत्र तथा महाशक्ति मंत्र का जप जो साधक न करना चाहे, उनके लिये इसकी अनिवार्यता नहीं है। जो करना चाहें और श्रद्धपूर्वक कर सकें, उन्हें इससे विशेष लाभ होगा।

ॐॐॐकार की ध्यान धारणा- यह ध्यान सामान्य ध्यान की अपेक्षा कुछ विशिष्ठ है। इस ध्यान के पूर्व साधक की धारणा परिपक्व हो जानी चाहिए, जो प्रथम चरण की साधना उचित ढंग से चलाते रहने से पूर्ण हो जाती है। ध्यान का क्रियात्मक स्वरूप स्पष्ट रूप से चक्रों के जागरण का ध्यान ही है। इसके लिए साधक को ध्यान मुद्रा में कमर सीधाकर हाथ गोदी में इस प्रकार रखें कि बायीं हथेली नीचे तथा दाहिनी हथेली ऊपर रहे। कुछ साधक ध्यान में अकड़कर सीधे बैठते तथा दोनों हाथ तथा दोनों घुटने पर अलग-अलग रखकर बैठते हैं। यह भी ध्यान मुद्रा है, किन्तु यह निराकार उपासकों के लिए है, न कि साकार उपासकों के लिए। अपनी ॐॐॐकार साधना विशुद्ध रूप से साकार उपासना है, अतः साधकों को चाहिए कि परम पूज्य गुरुदेव द्वारा निर्धारित ध्यान मुद्रा (ब्रह्माञ्जली मुद्र) जिसमें कमर व गर्दन सीधी करके सामान्य रूप से सहज स्थिति में तनाव रहित बैठना और बायीं हथेली नीचे तथा दाहिनी हथेली उसके ऊपर करके गोदी में रखकर बताया गया है, ही उपयुक्त है।

उपरोक्त रीति से ध्यान मुद्रा में बैठकर ध्यान का प्रारम्भ इस प्रकार करें कि अधखुली आँखों को हल्के से ऊपर की ओर चढ़ाकर मन को आज्ञाचक्र से त्रिकुटी होते हुए सहस्त्रार में ले जाएं और वहाँ पर ध्यान करें कि परम पूज्य गुरुदेव तथा वन्दनीया माता जी कमलासन पर बैठे हैं उनके चरणों में अपना मस्तक लगाएँ और वापसमन को त्रिकुटी में ले जायें और त्रिकुटी में 5 मिनट तक छोटी सी दीपक की लौ का ध्यान करें। त्रिकुटी का स्थान आज्ञाचक्र के पीछे सहस्त्रार के ठीक नीचे माना गया है। इसी को अंग्रेजी में पिट्यूटरी ग्रंथि कहा गया है। 4- मिनट तक त्रिकुटी में ध्यान करने के बाद उस ज्योति को रंचमात्र नीचे उतारकर आगे की तरफ आज्ञा चक्र में ले आवें। आज्ञाचक्र में जितनी देर तक ध्यान कर सकें करें। तब ध्यान बन्द करें तो मन की ज्योति

सहित पुनः पीछे करके त्रिकुटी में ले जाएं और वहीं से ध्यान की समाप्ति कर दें। आज्ञाचक्र का स्थान दोनों भौंहों के बीच बाल नाक की तरफ मुड़कर जहां मिलने से प्रतीत होते हैं, उसके मध्य ढलान के सीधे में सिर की तरफ गहराई में लगभग 2 इंच अन्दर होता है। उसके पीछे त्रिकुटी का स्थान तथा त्रिकुटी के ठीक ऊपर सहस्त्रार होता है।

चक्रवेधन - उपरोक्त प्राणायाम तथा ध्यान-धारणा को समुचित ढंग से सम्पन्न किया जाता रहे, तो चक्रों को क्रमशः मूलाधार-स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञाचक्रों का जागरण कुण्डलिनी का पूर्वार्ध कहा जाता है। नियमित प्राणायाम से कुण्डलिनी पथ सुषुमना की सफाई धुलाई हो जाती है। जिससे अपान वायु का ऊर्ध्वगमन प्रारम्भ हो जाता है। यह ऊर्ध्वगमन सुषुम्ना मार्ग में अवस्थित चक्रों में केन्द्रित कर इनमें प्राणवायु का आघात करने से यह खुलते, खिलते चले जाते हैं। साधक अपने ध्यान में इन चक्रों में अवस्थित कमल दल की पंखुड़ियों उनके रंगों, वाहन तत्व, तन्मात्रा आदि को स्पष्ट रूप से देख सकता है।

चक्रवेधन की जिज्ञासा रखने वाले साधक यदि अपेक्षाकृत कम समय में ज्यादा सफलता प्राप्त करना चहते हो, तो उन्हें व्यक्तिगत सम्पर्क करने पर वह विधि भी बताई जा सकती है, जिससे कि चक्रों का जागरण निर्विघ्न रूप से बिना किसी खतरे के आसानी से हो सकता है। चक्र जाग्रत करने की यह विधि लिखकर नहीं बतायी जा सकती है, क्योंकि इसके लिए साधक की पात्रता तथा उसके समर्पण भाव की जांच परख करनी पड़ती है। महाशक्ति के दरवाजे की चाबी सहज ही सर्वसुलभ होती तो अभी तक सामूहिक रूप से कुण्डलिनी जगाने वाले बाबाजी लोग न जाने कब के लाखों करोड़ों की कुण्डलिनी जाग्रत कर उन्हें निहाल कर दिये होते, लेकिन वर्षों भटकने के बाद भी कुछ लोग बिना मूल्य चुकाए जल्दबाजी में सब कुछ प्राप्त करने की आतुरता में अपना श्रम, समय तथा धन बर्बाद करते रहते हैं और अन्त में खाली हाथ रह जाते हैं। अतएव सावधानीपूर्वक साधना में प्रवृत्त होकर जीवन को धन्य बनाने के अनुपम सुयोग को हाथ से निकलने नहीं देना चाहिए।

आध्यात्मिक साधनाओं में साधक को अपनी इन्द्रियों के साथ-साथ मन और चेतना पर भी नियंत्रण करना पड़ता है। आहार-विहार से लेकर दैनिक कार्य व्यवहार पर भी कड़ी नजर रखनी पड़ती है। इसी केवल पर मन और चेतना पर अधिकार किया जा सकता है। भारतीय ऋषियों ने अध्यात्म क्षेत्र में शीघ्र सफलता

प्राप्त करने हेतु योग विज्ञान का सहारा लिया था। योगियों ने ध्यानावस्था में अपने शरीर के अन्दर 72000 सूक्ष्म नाड़ियों के अनुसंधान में सफल हुए थे। इन्हीं नाड़ियों का जाल सम्पूर्ण मानवीय काया को एक सूत्र में बांधे हुए है। इन नाड़ियों का केन्द्र बिन्दु नाभि है। नाभि हमारे शरीर के मध्य में स्थित है। नाभि स्थल के पीछे अवस्थित मेरूदण्ड के अन्दर सुषुम्ना नामक एक सूक्ष्म नाड़ी है उसके अन्दर मूलाधर से लेकर सहस्त्रार तक विभिन्नि शक्ति केन्द्र अवस्थित है। योगियों ने इन्हीं केन्द्रों को चक्रों के नाम से सम्बोधित किया है। सामान्य रूप से सात चक्रों तक ही सब की जानकारी हो पाई है और इन्हें ग्लैण्ड्स नाम से सम्बोधित किया है। परन्तु योगियों ने सुषुम्ना को जागृत कर उससे सम्बन्धित चक्रों को भी सक्रिय और जागृत करने में सफलता पायी थी।

मानवीय काया में ऐसे सैकड़ों केन्द्र हैं जिनमें प्राण ऊर्जा की बहुलता है इन्हें शक्ति केन्द्र भी कहा जाता है। इनमें 700 प्रमुख केन्द्रों की जानकारी चिकित्सा विज्ञानियों को हो गई है। इन उपत्तिकाओं में थोड़ी भी गड़बड़ी हो जाने पर शरीर में नाना प्रकार की बीमारियां लग जाती है। एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर चिकित्सा प्रणाली द्वारा इन्हीं मर्म स्थानों को सक्रिय कर रोगी को स्वस्थ कर दिया जाता है। यौगिक क्रियाओं, फिजियोथैरेपी द्वारा इन्हीं मर्म स्थानों को सक्रिय, उत्तेजित कर रोग निवारण कर दिया जाता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक के० कार्लफ्रीड ने **'द वाइटल सेन्टर्स ऑफ मैन''** नामक अपने ग्रंथ में लिखा है कि इन मर्म स्थानों पर तंत्रिका तन्तु अधिक मात्रा में सघन एवं संग्रहीत होते हैं। इन सभी केन्द्रों के अतिरिक्त सुषुम्ना मध्य दस ऐसे प्रमुख केन्द्र होते हैं जिन्हें योग की भाष में चक्र नाम दिया गया है। इनमें कमल पुष्प की कलियों की संख्या भी सभी चक्रों में भिन्न-भिन्न संख्या में होती है। इन दसों में सामान्य रूप से सात की ही जानकारी सबको होती है।

सुषुम्ना के अन्तर्गत अवस्थित समस्त चक्र- मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र के पीछे अवस्थित व्योम चक्र तक सभी चक्रों के जागरण के लिए विभिन्न यौगिक क्रियाओं का अनुसंधान किया गया है। इनमें से अति आवश्यक क्रियाओं जैसे प्राणायाम, मुद्रा, आसन, ध्यान, जप इत्यादि के नियमित अभ्यास से साधक सुषुम्ना स्थित चक्रों को जागृत कर भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों मार्गों में सफलता प्राप्त करता हुआ सुख शान्ति का जीवन जीता है। मानवी काया में इन चक्रों की सक्रियता एवं उनसे मिलने वाले अनुदानों की कोई सीमा नहीं है।
मूलाधार चक्र- यह चक्र सुषुम्ना के निचले सिरे पर होता है, जो गुदा और

जननेन्द्रिय के मध्य में थोड़ा गहराई में अवस्थित होता है। यहां पर सुषुम्ना मध्य स्थित ब्रह्म नाड़ी हजारों भागों में विभक्त होकर एक गुच्छक का रूप धारण कर लेती है। यही मूलाधार चक्र का केन्द्र है। इस गुच्छक में संचारित विद्युत धारा चक्रवात के समान ऊर्जा पैदा करने वाली भंवर बनाती है। इसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति प्रवाह को मूलाधार चक्र की शक्ति माना गया है। यही पर कुण्डलिनी साढ़े तीन चक्कर लगाकर मूलाधार में शिवलिंग के समान त्रिकोण कण में लिपटी रहती है। यह चक्र चार पंखुड़ियों वाला है। इसका तत्त्व पृथ्वी है। रंग पीला स्वर्णिम सूर्योदय के समान गोले आकार में होता है। इसकी तन्मात्रा गंध है। इस चक्र के जागरण के समय यह गंध साधक को स्पष्ट रूप से अनुभव होने लगती है। यह भू लोक का प्रतिनिधित्व करता है। इसके जागरण के साथ लं ध्वनि साधक को सुनाई पड़ने लगती है। इसलिए इसका बीजाक्षर ल माना गया है।

स्वाधिष्ठान चक्र- यह चक्र मूलाधार के लगभग चार अंगुल ऊपर है। नीचे कमर की बाईं दायीं हड्डियों के मध्य जहां पर सुषुम्ना मिलती है वहीं स्वाधिष्ठान चक्र का स्थान है। यह 6 पंखुड़ियों वाला चक्र जननेन्द्रिय के मूल के पीछे स्थित होता है। इस स्थान पर स्थित ग्रंथि सुषुम्ना के दोनों तरफ स्थित सिम्पैथेटिक गैंगलियान व सुषुम्ना की कड़ी से बनने वाले गुच्छक से मिलकर यह चक्र बनता है। इससे मिलने वाली आन्तरिक एड्रिनल नामक हारमोन का उत्पादन करती है। इसी ग्रन्थि में तनाव या संकट के समय मोर्चा लेने की क्षमता होती है। साहस व पुरुषार्थ इस ग्रंथि की सक्रियतापर ही निर्भर है। इस चक्र के जागरण से साधक में आलस्य प्रमाद का भाव नष्ट हो जाता है। उत्सर्जन व विसर्जन इसका प्रमुख कार्य है। सन्तानोत्पादन तथा मूत्र व वीर्य का वहिर्गमन का केन्द्र यही है। यहां पर स्थित चक्र छः पंखुड़ियों का है इसकी तन्मात्रा रस है। तत्व जल है। इसका बीज मंत्र व है इस चक्र के जागरण से साधक को **वं** ध्वनि सुनाई पड़ती है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान यह दोनों चक्र मिलकर रूद्ग्रंथि का निर्माण करते हैं।

मणिपुर (स्वाधिष्ठान चक्र)- स्वाधिष्ठान चक्र के ऊपर नाभि स्थान के पीछे सुषुम्ना मध्य यह चक्र होता है। इसको दस पंखुड़ियों वाला चक्र माना गया है। यहीं पर सोलर प्लैक्सेस होता है। इसका कार्य आहार को पचाना, पाचन शक्ति को बढ़ाना है। यही हारमोन्स इन्जाइम्स का निर्माण करती है। इस चक्र के जागरण से साधक में संकल्प बल बढ़ता है, आत्मबल में भी वृद्धि होती है। मनोविकारों का शमन होता है। साधक में परमार्थ परायणता का भाव पैदा होता है। इस चक्र

के जागरण से साधना के समय **'रं'** ध्वनि सुनाई पड़ती है। इसीलिए इसका बीजाक्षर **'र'** माना जाता है। इस चक्र के जागरण से तीनों अग्नियाँ जाग्रत हो जाती है, जो ऊर्जा के उर्ध्वगमन में सहायक होती हैं, जिन्हें ओजस्, तेजस्, वर्चस्व के रूप में जाना जाता है। जापान के वैज्ञानिक डॉ० हिरोशिमा मोटोयामा ने अपनी चक्रा मशीन में इस चक्र की क्षमता को माप लिया है, जिसको ग्राफ पर अंकित भी किया है।

अनाहत चक्र - इसे हृदय चक्र भी कहा जाता है, जो हृदय के पीछे सुषुम्ना में कार्डिक प्लेक्सेस के स्थान पर स्थिति होता है। यहां पर सिम्पैथिक गैंगलियान चेन व सुषुम्ना तथा बेगसनर्व के तन्तु मिलकर एक जाल बनाते हैं यह पूरे हृदय क्षेत्र को ऊर्जा प्रदान करने का कार्य करता है। पेसमेकर की भूमिका यही केन्द्र पूरा करता है। इस चक्र में बारह पंखुड़ियों का कमल बनता है। कोमल भावनाओं, सम्वेदनाओं का उत्पादन केन्द्र यही चक्र है। इस चक्र के जागरण से साधक में परमार्थ पारायणता उदार सहकारिता, वसुधैव कुटुम्बकम के भाव उत्पन्न होते हैं। इससे जुड़ी ग्रंथि थाइमस कही जाती है। इस चक्र के जागरण से साधक को साधनावस्था **'यं'** ध्वनि सुनाई पड़ती है। इसीलिए इसका बीजाक्षर **य** माना गया है। अनाहत चक्र तथा मणिपुर चक्र मिलकर विष्णु ग्रंथि का निर्माण करते हैं। सूक्ष्म शरीर के जागरण का केन्द्र यह अनाहत चक्र ही है।

विशुद्धि चक्र - इस चक्र का स्थान कंठ के पीछे जहां कन्धे की दो हड्डियां मिलती हैं और सुषुम्ना का संगम होता है वहीं पर है। इससे सम्बन्धित ग्रंथियां थाइराइड एवं उसके पीछे स्थित फेरेन्जियल व लेरेन्जियल होती हैं। इस चक्र के जागरण से साधक में अतीन्द्रिय क्षमता का विकास प्रारंभ हो जाता है। इसके जागरण से अचेतन मन तथा चित्त यह दोनों प्रभावित होते हैं। यह सोलह पंखुड़ियों वाला चक्र है। इसकी तन्मात्रा स्पर्श तथा तत्व आकाश है। इसके जागरण से साधक को **'हं'** शब्द की ध्वनि अन्त:करण में सुनाई पड़ने लगती है। इसका बीजाक्षर **'ह'** माना गया है।

आज्ञाचक्र- षट्चक्रों में आने वाला छठवां चक्र आज्ञा चक्र है। मस्तिष्क मध्य की सीध में पिनियल एवं पिट्यूटरी यह दोनों ग्रंथियां है। इन दोनों के संयोग से आज्ञाचक्र बनता है। दोनों कानों को जोड़ने वाली एक रेखा खींची जाय और दूसरी रेखा दोनों भृकुटियों के मध्य से मस्तिष्क के अन्दर खींची जाय तो जहां यह रेखा दोनों कानों को जोड़ने वाली रेखा को काटेगी वह स्थान त्रिकुटी का होता है। उससे सामने की तरफ पिनियल एवं पिट्यूटरी का मिलन केन्द्र बनता

है उसे ही आज्ञा चक्र कहा जाता है। मोटे तौर से दोनों भृकुटियों के मध्य जहां महिलाएं बिन्दी लगाती हैं उसके सीध में लगभग दो से ढाई इंच की गहराई में यह चक्र होता है। यही केन्द्र पूरे शरीर की गतिविधियों को नियंत्रित करता है। इसके जागरण से ॐ ध्वनि सुनाई पड़ती है। ॐ ही इसका बीजाक्षर है। विशुद्धि और आज्ञाचक्र मिलकर ब्रह्म ग्रंथि का निर्माण करते हैं।

सहस्त्रार- सहस्त्रार त्रिकुटी के ठीक ऊपर अवस्थित होता है, **इसके विषय में परम पूज्य आचार्य पं० श्रीराम शर्मा के वाड्.मय १५पृ० ३.१२ में लिखा है**- "भारतीय योगियों ने ब्रह्मरन्ध्र स्थित जिन षट्चक्रों की खोज की है, सहस्त्रार कमल उनसे बिल्कुल अलग सम्प्रभुता सम्पन्न केन्द्र है। यह स्थान दोनों कनपटियों से दो-दो इंच अन्दर भृकुटी से लगभग ढाई या तीन इंच अंदर छोटे से पोल में प्रकाश तत्वों से बना होता है, देखने में यह मर्करी लाइट के समान दिखाई देता है।"

इस चक्र में मोटेतौर पर 12 पंखुड़ियां दिखाई पड़ती है। किन्तु इसके पूर्ण जागरण की स्थिति में प्रत्येक पंखुड़ी में 80-80 और पंखुड़ियाँ निकली हुई महान योगियों ने गिना है। जो 12x80 = 960 हुई। यह गणना सामान्य साधक नहीं कर सकते। अत: उसे हजारों की संख्या वाला कह कर सहस्त्रार नाम दे दिया है।

ब्रह्मरन्ध्र- यह सहस्त्रार के ठीक ऊपर होता है। इसकी अनुभूति प्राय: सहस्त्रार से जुड़ी हुई होती है, परन्तु यह सिर की खोपड़ी और सहस्त्रार के मध्य अवस्थित होता है। सहस्त्रार के जागरण के उपरान्त ही गुरु कृपा से ब्रह्मरन्ध्र भेदन की क्षमता मिलती है। त्रिकुटी, सहस्त्रार और ब्रह्मरन्ध्र ठीक एक सीध में एक के ऊपर एक अवस्थित हैं।

साधना में गुरु का महत्व- भौतिक या आध्यात्मिक सभी कार्यो में सफलता प्राप्त करने के लिए गुरु या मार्गदर्शक की आवश्यकता होती है। भौतिक कार्य तो दूसरों की नकल करके भी कुछ सीमा तक किए जा सकते हैं; किन्तु आध्यात्मिक साधनाएँ तो मात्र महान गुरु के संरक्षण में ही पूर्णता को प्राप्त करती हैं। वास्तविक तथ्य तो यह है कि सृष्टिकर्ता भगवान सदाशिव ही संसार के गुरु हैं। शेष शरीरधारी मानव तो मात्र उनके प्रतिनिधि के रूप में ही किसी का मार्गदर्शन कर सकता है गुरु के रूप में नहीं, क्योंकि अपात्र और अधूरी जानकारी वाला मानव जब गुरु बनता है तब गुरु और शिष्य दोनों को ही दुर्गति होती है। इसीलिए इस **ॐॐॐकार** साधना में शिव स्वरूप पू०पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

जी को ही गुरु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। परम पूज्य आचार्य जी अब महाकारण स्वरूप में ब्रह्ममय हो गए हैं। अत: उनका ध्यान उनके प्रकाश शरीर के रूप में किया जाना चाहिए।

चक्र जागरण का ध्यान- मूलाधार चक्र में सामान्य रूप से एकाग्रता लगभग 30 मिनट तक की सध जाये तो कोई भी साधक सहस्त्रार से ध्यान के द्वारा नीचे मूलाधार तक बड़ी सरलता से उतरता चला जायेगा। एक-एक करके उतरते हुए जब मूलाधार चक्र में पहुँच जाय तब मूलाधार का बीजाक्षर मंत्र **लं (लम्)** का उच्चारण करते रहना चाहिए। इस **'लं'** बीज मंत्र का जप ध्यान के साथ करते रहने से साधक को इस चक्र से **'लं'** ध्वनि निकलती, गुंजायमान होती हुई सुनाई पड़ने लगेगी। अभ्यास करते-करते सिन्दूरी रंग का एक गोला दिखाई पड़ने लगेगा। हल्की-हल्की गन्ध की महक आने लगती है। यह गन्ध मिट्टी की गंध के समान होती है। इस चक्र का वाहन हाथी है। उसके भी दर्शन होते हैं। इसमें चार पंखुड़ियों का कमल है यह सभी लक्षण प्रकट होने लगें तब साधक को सहस्त्रार से उतरते हुए मूलाधार चक्र में 2-3 मिनट ध्यान करके मन को स्वाधिष्ठान चक्र में ले जाना चाहिए।

स्वाधिष्ठान चक्र की साधना- नीचे मूलाधार चक्र से ऊपर जननेन्द्रिय मूल में स्वाधिष्ठान चक्र होता है। ऊपर सहस्त्रार से उतरते हुए मूलाधार में पहुंचें वहां पर थोड़ा ध्यान करके मन को ऊपर उठाकर स्वाधिष्ठान चक्र में ले जायें। वहां पर सफेद रंग के एक रूपये के सिक्के के बराबर गोले का ध्यान करें। इस चक्र के बीज मंत्र **'वं'** (वम्) का मानसिक उच्चारण करते रहें। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद इस चक्र में 6 पंखुड़ियों वाले कमल के दर्शन होने लगेंगे। इसका वाहन मगर है। अत: मगर, मछली, मेंढक इत्यादि जल जन्तुओं के दर्शन होने लगेंगे और वं ध्वनि पड़ने लगेगी। जिह्वा का स्वाद कसैला अनुभव होने लगता है। इन लक्षणों के प्रकट होने पर इस चक्र के जागरण के लक्षण मान लेना चाहिए।

मणिपुर चक्र- इसे नाभि चक्र भी कहा जाता है। इस चक्र की साधना के लिए सहस्त्रार चक्र से नीचे उतरते हुए मूलाधार चक्र तक जाँय वहां पर 1-2 मिनट ध्यान करके विशुद्धि चक्र में एक मिनट तक ध्यान करके मन को ऊपर उठाकर नाभि के पीछे सुषुम्ना में स्थित मणिपुर चक्र में लाएं वहां पर ध्यान करें। यहां पर लाल रंग के सिक्के के आकार का ध्यान करें। इसका बीज मंत्र **'रं'** (रम्) है। ध्यान के साथ मानसिक रूप से **'रं'** मंत्र का उच्चारण करते रहें। कुछ दिन

निरन्तर अभ्यास करते रहने से नाभि चक्र से **'रं'** ध्वनि गुंजरित होती सुनाई पड़ने लगेगी। आग की ज्वाला उठती दिखने लगेगी। प्राणियों की आकृतियां दिखाई पड़ने लगेगी। इसका वाहन भेड़ा है इन लक्षणों के प्रकट होने पर मणिपुर के जाग्रति के लक्षण मानना चाहिए।

अनाहत् चक्र - इस को हृदय चक्र के नाम से भी जाना जाता है। मणिपुर चक्र जागरण के उपरान्त अनाहत् चक्र में मन को केन्द्रित करना चाहिए। वहां पर 12 पंखुड़ियों का कमल है। इसका बीजाक्षर **'य'** है। अत: बीज मंत्र **'य'** है। सहस्त्रार से उतरते हुए एक-एक मिनट तक सभी चक्रों में मन को रोकते हुए मूलाधार चक्र तक जाना चाहिए उसके बाद मूलाधार से ऊपर उठते हुए हृदय के पीछे सुषुम्ना में अवस्थित ग्रंथि में ध्यान को केन्द्रित करके मानसिक रूप से **यं** बीज लक्ष्य बनाकर न करके उनके परम पूज्य गुरुदेव के कारण स्वरूप प्रकाश को एक ज्योति के रूप में प्रतिष्ठित करके करना चाहिए। हाँ परम वन्दनीया माताजी महाकारण एवं सूक्ष्म दोनों स्वरूपों में समयानुसार दिखाई पड़ती है। अत: उनका ध्यान उनके फोटो का ध्यान करके किया जा सकता है।

गुरु का स्थान शिष्य का सहस्त्रार होता है। अत: साधकों को चाहिए अपने सहस्त्रार में गुरु को ज्योति स्वरूप में प्रतिष्ठित करके साधना करें। गुरुमाता के रूप में साधक माता भवगती देवी शर्मा को ही सहस्त्रार में प्रतिष्ठित करें, जो इन्हें प्रतिष्ठित न करना चाहें तो अपने गुरु परम्परा जन्मी महान महिला जो गुरुमाता के रूप में रह चुकी हों जैसे ठाकुर रामकृष्ण परमहंस की सहधर्मिणी माता शारदा देवी एक आदर्श गुरुमाता हैं को भी प्रतिष्ठित किया जा सकता है। ऐसे साधक जिन्होंने गुरु नहीं बनाया अथवा छोटे मोटे बाबा जी लोगों को गुरु बनाया है। जिन्हें ब्रह्म के दर्शन नहीं हुए। उन लोगों को चाहिए कि भगवान शिव को गुरु मानकर उनके प्रकाश स्वरूप ज्योति को अपने सहस्त्रार में प्रतिष्ठित करके साधना करें। गुरु माता के रूप माता पार्वती अथवा महाकाली को उनकी सहधर्मिणी मानकर साधना के मार्ग में प्रगति कर सकते हैं।

चक्रों की साधना- मानवी काया में विद्यमान सुषुम्ना में अवस्थित विभिन्न शक्ति केन्द्रों को भारतीय योगियों ने चक्रों के नाम से जाना समझा है। सामान्य जानकारी में मूलाधार से सहस्त्रार तक सात चक्रों को ही लोग जानते हैं परन्तु साधनात्मक गहराई में पहुंचने पर दस चक्रों के दर्शन होते हैं। इन्हीं चक्रों को जाग्रत कर योगियों ने ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आशातीत सफलता पायी थी। कौषतिकि ब्रह्मणोपनिषद में वर्णित अन्तरिक्ष का विस्तृत ज्ञान आज भी विज्ञान के

लिए एक चुनौती है। विज्ञानी अपने खोजों में इस ऋषिज्ञान की प्रारंभिक सीढ़ी पर ही कदम रख पाए हैं। ऋषियों ने इन चक्रों को जागृत कर अपने अन्तः को जागृत कर उसे अन्तःविज्ञान की प्रयोगशाला बना लिया था, अर्थात् अपने अन्तःकरण में ही अन्तरिक्ष विज्ञान की खोज करने तक में सफल हुए थे।

चक्रों के जागरण की साधना के पूर्व ध्यान का अभ्यास कर लेना चाहिए क्योंकि चक्रों के जागरण में मन को इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना में लोम-विलोम तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम करते समय ले जाना चाहिए। प्राणायाम करते समय खींची गई प्राणवायु के प्रवेश का तथा वहिर्गमन करते समय उसके निकलने के देखने का प्रयास करना चाहिए। इससे ध्यान सधने लगता है। ध्यान लगने लगे तब चक्रों का ध्यान करना सहज हो जाता है।

चक्र जागरण का अभ्यास साधना स्थली में बैठकर करना ज्यादा उपयुक्त होता है। उसके लिए सुविधानुसार किसी भी आसन में बैठकर शान्त चित्त स्थिर शरीर करके बाईं हथेली के ऊपर दाहिनी हथेली रखकर ध्यान करें मन को आज्ञाचक्र से जरा सा पीछे ले जाकर उसके ऊपर थोड़ी ही दूरी पर सहस्त्रार है। ध्यान करें कि सहस्त्रार में एक सुन्दर कमल पुष्प खिला हुआ है। उस कमल में परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य तथा ज्योति स्वरूप में वन्दनीया माता भगवती देवी शार्म विराजमान हैं। उनके मानसिक रूप से चरण स्पर्श करने के उपरान्त मन को नीचे त्रिकुटी में उतारकर लगभग 5 मिनट ध्यान करें वहां से मन को आज्ञा चक्र में ले आयें। यहां एक मिनट के करीब रूकें। उसके उपरान्त मन त्रिकुटी के नीचे ले जायें वहां से नीचे विशुद्धि चक्र में मन को लाएं। 15-20 मिनट तक ध्यान लगने की स्थिति बन जाने पर विशुद्धि चक्र में मन उतर जायेगा। यदि न उतरे तो आज्ञा चक्र में ही ध्यान करें। कुछ दिन बाद पुनः विशुद्धि चक्र में मन को उतारें जब उतर जाये तब एक डेढ़ माह तक विशुद्धि चक्र में ही ध्यान करें।

विशुद्धि चक्र में ध्यान लगने लग जाय तब मन को सुषुम्ना में नीचे उतारें और सुषुम्ना मध्य हृदय के पीछे हृदय चक्र में ध्यान करें। इस चक्र में मन उतर जाये तब एक से डेढ़ माह तक इसी चक्र में ध्यान करें। इतने में मन नीचे उतर जायेगा जब तथा मन नीचे उतरे तब तक यही पर मंत्र का उच्चारण करते रहना चाहिए। यहां पर मठमैले रंग के छोटे गोले का ध्यान करें। जब यहां से मन उचटे तो ध्यान को विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र और त्रिकुटी से सहस्त्रार में पहुंच कर ज्योति स्वरूप में परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माता जी को

मानसिक रूप से प्रणाम करके मन को त्रिकुटी से आज्ञाचक्र में पहुंच कर ध्यान बन्द कर देना चाहिए। महीने दो महीने तक यह अभ्यास करते रहने से यहां पर द्वादस पंखुड़ियों का कमल स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। उससे धूल भरी आँधी चलने का तथ हिरन तेज गति से दौड़ता दिखाई देने लगे, यं ध्वनि सुनाई पड़े तक समझ लेना चाहिए कि अनाहत चक्र जाग्रत हो गया।

विशुद्धि चक्र- पूर्ववत सहस्त्रार से मूलाधार चक्र तक तथा मूलाधार चक्र से ऊपर उठकर एक-एक करके विशुद्धि चक्र में पहुंचकर वहीं ध्यान करना चाहिए। इस चक्र में 16 पंखुडियाँ हैं। इसका बीजाक्षर **'ह'** है। बीज मंत्र **'हं'** होता है। यहां पर नीले रंग के अण्डाकार चित्र की कल्पना करके उसी में मन को केन्द्रित कर ध्यान करना चाहिए। कुछ दिन नियमित ध्यान करते रहने पर हं ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। ध्यान में नीला आकाश अथवा नीले वर्ण की दूसरी आकृतियां दिखाई पड़ने लगती हैं। यह 16 पंखुड़ियों का कमल तो प्रारंभ से ही दिखने लगता है। कर्णेन्द्रिय सक्रिय हो जाती है। अतः सुदूर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। महीने डेढ़ महीने के अभ्यास से यह चक्र जाग्रत हो जाता है। इसका वाहन ऐश्वर्य का प्रतीक ऐरावत है।

आज्ञाचक्र- विशुद्धि चक्र के जाग्रत होने पर पूर्ववत मूलाधार से उठते हुए आज्ञाचक्र में पहुंचकर **''ॐ''** मंत्र का मानसिक जाप करते हुए दो पंखुड़ियों वाले कमल का ध्यान करना चाहिए। यह केन्द्र बहुत ही चंचल है। इसमें ध्यान काफी प्रयत्न करने पर स्थिर होता है। इससे घबड़ाकर साधक को भागना नहीं चाहिए। कुछ दिनों के अभ्यास से यह चक्र जाग्रत हो जायेगा तब पहले दो पंखुड़ियों वाला कमल बाद में एक दिव्य नेत्र खड़े आकार का दिखाई पड़ने लगेगा। यहीं पर स्थित दिव्य दृष्टि से भगवान शंकर ने कामदेव को भस्म किया था। इसके जागरण से दूर दराज के दृश्य स्पष्ट दिखाई पड़ने लगते हैं। कुछ भविष्य में घटित होने वाली घटनाएं भी पहले से ही दिखाई पड़ जाती है किन्तु साधक को किसी अन्य व्यक्ति से बताने पर उसकी साधना भंग होती है। यदि बताना ही चाहें है अपने साधना के मार्गदर्शक को ही बताएं अन्य को नहीं। यह ध्यान निरन्तर करते रहने से साधक दिव्य दृष्टा हो जाता है।

सहस्त्रार चक्र- आज्ञाचक्र की जागृति के लक्षण प्रकट होने पर साधक को पूर्ववत् सहस्त्रार में अपने ज्योति स्वरूप गुरु को ज्योति रूप में बैठा देखकर उन्हें प्रणाम करके एक-एक करके नीचे मूलाधार चक्र तक जाए। वहां पर 5 मिनट तक ध्यान करके ऊपर के चक्रों में 1-1 मिनट तक ध्यान करते हुए सहस्त्रार में

पहुंच जाना चाहिए। यहां पर हजार पंखुडियों के कमल में अपने गुरु को बैठा हुआ देखें। यहां का बीज मंत्र ''ॐ'' है। इस ॐ अथवा ॐकार का उच्चारण मानसिक रूप से करते रहें। जब तक ध्यान लगा रहे तब तक यहाँ पर ध्यान करना चाहिए। जब हजारों पंखुड़ियों का कमल स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे और जिसे आपने अपना आध्यात्मिक गुरु बनाया है। वह स्पष्ट रूप से बैठा दिखने लगे तब समझ लेना चाहिए कि सहस्त्रार का जागरण प्रारंभ हो गया। ध्यान के हट जाने पर आज्ञाचक्र में वापस आकर ध्यान समाप्त कर देना चाहिए।

नोट- ऐसे साधक जो मात्र चक्र जागरण की ही साधना करना चाहते हैं। उन्हें चाहिए कि ध्यान के साथ लोम-विलोम प्रणायाम तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करते चलें। संयमपूर्वक प्राणायाम और चक्रों के जागरण का ध्यान करते करते स्वत: कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। ऐसे लोग जो साधना को आध्यात्मिक दृष्टि से न करके भौतिक दृष्टि से ही करना चाहते हो उन्हें चाहिए इन दोनों प्राणायामों को करते समय प्राणवायु का इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना में प्रवेश तथा रेचक करते समय उन्हीं नाड़ियों से दूषित वायु को वहिर्गमन करते देखें। इस अभ्यास से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के दर्शन होने लगेंगे तब प्रतिदन ध्यान सुषुम्ना नाड़ी में करने लगे। इससे भौतिक जीवन में सफलताएं भी मिलने लगती हैं। जहां भी ऐसे साधक पहंचेंगे लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखेंगे तथा उनके उलझे कार्यो में मदद करने लगेंगे।

जप-ॐॐॐकार साधना विज्ञान की सभी साधनाओं में मंत्र जप अनिवार्य है। बिना जप किए मात्र क्रिया मार्ग अपनाने से शरीर के सूक्ष्म कोषों में थोड़ा बहुत हलचल होकर परिवर्तन तो होता है किन्तु श्रद्धा, भक्ति के अभाव में इसका आध्यात्मिक लाभ नहीं मिल पाता। संसार के सभी धर्मो के मंत्र सृष्टि के इस बीज मंत्र **ॐॐॐकार** से ही निकले हैं। अत: वह चाहे ईसाई प्रार्थना हो, इस्लाम धर्म का कलमा या हिन्दूओं के चौबीसों गायत्री मंत्र, या महामृत्युंजल मंत्र, या तंत्र साधना के मंत्र अन्य सभी मंत्रों का मूल स्रोत सृष्टि का यह बीजमंत्र **ॐॐॐकार** ही है। इस मंत्र में तंत्र के जनक भगवान सदाशिव तथा प्रकृति स्वरूपा माता महामाया की संयुक्त शक्ति समाहित है। अत: सभी प्रकार की साधनाओं में इस मंत्र का जप अत्यन्त उपयोगी माना गया है।

चक्रों के जागरण की साधना करते समय प्रारंभ में न्यूनतम 10 मिनट तक **ॐॐॐकार** मंत्र का जप कर लेना चाहिए। चक्रों में ध्यान करते समय

उसके बीज मंत्र का जप किया जाता है। यदि कोई उस बीज मंत्र का जप न करना चाहे तो उसकी जगह **ॐॐॐकार** मंत्र का भी जप किया जा सकता है। सम्बन्धित चक्र की जाग्रतावस्था में उसके बीज मंत्र यथा- **लं, वं, रं, यं, हं,** जो भी उस चक्र से सम्बन्धित हो वही ध्वनि सुनने में मन को केन्द्रित कर देना चाहिए।

सभी चक्रों के जागरण के पश्चात् **ॐॐॐकार** मंत्र का जप और ध्यान करना चाहिए। क्रिया के रूप में केवल प्राणायाम ही दस-पन्द्रह मिनट कर लेना चाहिए। इससे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है, इससे ध्यान भी प्रगाढ़ होता है। चक्र जागरण की साधना कर लेने के पश्चात् अन्य कोई भी साधनाचाहे, पंचकोशी साधना हो, तीनों शरीरों की साधना अथवा कुण्डलिनी साधना सभी सरलता से सध जाती है। यह मंत्र इतना प्रभावशाली है कि यदि किसी साधक का ध्यान नहीं भी लगता तब भी यदि वह श्रद्धा विश्वास पूर्वक इस **ॐॐॐकार** मंत्र का जप अधिक से अधिक मात्रा में एक निश्चित समय, निश्चित स्थान और निश्चित समय तक करता रहे तो देर सवेर सभी चक्रों का जागरण स्वयंमेव होने लगेगा। अन्त में कुण्डलिनी भी जग जायेगी।

शक्ति संचार साधना- लोक कल्याणार्थ हिमालय स्थित ऋषि सताएँ अपने तप का एक अंश नियमित रूप से प्रक्षेपित करती रहती है। उनके तप का प्रात:काल सूर्योदय से एक घण्टे पूर्व से सूर्योदय तक तथा सूर्यास्त से दो घण्टे बाद से एक घंटे तक शाम को यह प्रक्षेपण दो गुने से भी अधिक हो जाता है जिन साधकों को किसी महान् सत्ता का मार्गदर्शन मिल जाता है, वे इस अवधि में अपना साधना क्रम बिठाकर शीघ्रातिशीघ्र सफलता की सीढ़ी पार कर लेते हैं।

परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य तथा वन्दनीया माता भवगती देवी शर्मा ने अपने अनुयाइयों को इस सुअवसर का लाभ उठाने के लिए शक्ति संचार तथा प्राणसंचार नाम की दो विशिष्ट साधनाओं का विधान बताया है। शक्ति संचार साधना का समय सूर्योदय से एक घण्टे पूर्व से लेकर सूर्योदय तक तथा सायं को सूर्यास्त उसे दो घंटे बाद से एक घण्टे तक निश्चित है।

शक्ति संचार साधना विधान- साधक को चाहिए कि अपने स्थानीय समयानुसार वर्षभर का सूर्योदय- सूर्यास्त की समय सारिणी पंचाग देखकर तैयार कर लें। घटते-बढ़ते सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय में ध्यान का कोई ऐसा समय निकालता रहे, जो महीने-पन्द्रह दिन तक स्थिर रह सके। उसके बाद पुन: पंचांग की सहायता से बने चार्ट के आधार पर समय बदलता रहे। इसमें सावधानी यही रखनी पड़ती है कि साधना का समय सूर्योदय के पूर्व से एक घन्टे के अन्दर ही

रहे गर्मियों में दिन बड़ा होने के कारण बहुत पहले तथा सूर्यास्त काफी विलम्ब से होने लगता है। इन सब परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आधा घंटे का समय इस शक्ति संचार के लिए सुबह या शाम में से कोई एक समय निर्धारित कर लेना चाहिए।

साधक उपरोक्त एक घंटे की अवधि के अन्दर अपनी पूजा स्थली अथवा अन्य किसी एकांत स्थान में उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठ जाय। ध्यान करें कि बर्फ से ढकी हुई हिमालय की सबसे ऊँची शिखर पर अपनी आराध्य सत्ता परम पूज्य गुरुदेव तथा वन्दनीया माता जी रत्न जड़ित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं। उनमें से किसी एक के आज्ञा चक्र से शक्तियुक्त प्रकाश किरणों का पुंज निकल रहा है तथा साधक की ओर बढ़ता हुआ साधक के सहस्रार में प्रवेश कर रहा है। सहस्रार से प्रवेश करके सीधे-सुषुम्ना मार्ग से स्थूल शरीर के प्रतिनिधि मणिपुर (नाभि) चक्र में पहुँचता है जहाँ पर उसके प्रभाव से दस दलवाले कमल से युक्त मणिपुर चक्र पुष्पित, प्रस्फुटित होता है, उससे प्रकाश की किरणें निकल कर उसके चारों ओर प्रकाश फैलाने लगती हैं। जितनी देर तक यह साधना करनी है उसका एक तिहाई भाग स्थूल शरीर के प्रतिनिधि मणिपुर चक्र में लगाना चाहिए। इसके बाद इससे ऊपर उठकर हृदय चक्र (अनाहत चक्र) में इसी साधना को करें। ध्यान पूर्ववत् गुरुसत्ता के अथवा वंदनीया माताजी की दाहिनी हथेली से प्रकाशपुंज निकलता और साधक के सहस्रार होता हुआ सूक्ष्म शरीर के प्रतिनिधि अनाहत चक्र में पहुँचता है और वहाँ बारह दल वाले कमल को पुष्पित, प्रकाशित करता है। इस समय अनुभव करें कि उससे प्रकाश की किरणें निकल कर आपके शरीर में भीतर से बाहर तक फैल रही है। इनका क्षेत्र नीचे से लेकर आज्ञा चक्र तक है। आरे की धार के समान फूट रही इन किरणों से शरीर खूब रोमांचित तथा प्रकाशित हो रहा है। प्रकाश शरीर के बाहर तक फैलता अनुभव करें। इसमें भी निर्धारित समय का एक तिहाई लगाएँ।

तीसरे और अन्तिम कारण शरीर का केन्द्र सहस्रार ही है। वहीं से होकर शक्ति संचार की किरणें मणिपुर तथा अनाहत चक्र तक पहुँचती हैं। एक-एक करके इन दोनों स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को सशक्त एवं प्रकाश युक्त बनाने के उपरांत अब कारण शरीर के केन्द्र सहस्रार चक्र का नम्बर आता है। ध्यान करें कि हिमालय स्थित अपनी इष्ट सत्ता द्वारा सम्प्रेषित प्रकाश पुंज ब्रह्मरन्ध्र से प्रवेश कर हमारे सहस्रार में पड़ रहा है, जिससे सहस्र दल वाला यह

चक्र पूर्ण पुष्पित एवं प्रकाशित होता है। इसके फलस्वरूप हमारे सहस्रार से प्रकाश की किरणें फूटती हैं और सहस्रार से नीचे पूरे शरीर में उनका प्रकाश फैल रहा हैं यह किरणें पूरे शरीर में अंदर ही रोम-रोम तक पहुंचकर संपूर्ण अंग-प्रत्यंग को पुष्पित, आनन्दित कर रही हैं।

यहाँ पर यह बात विशेष रूप से ध्यान में देखा जाए कि कारण शरीर के केन्द्र सहस्रार की किरणें सहस्रार से नीचे की ओर ही झर रही हैं। इन किरणों का सहस्रार से ऊपर की तरफ जाने व निकलने का भाव मन में न आए, इससे परिश्रम पूर्वक अर्जित साधना की शक्ति का वहिर्गमन होने लगता है। जबकि आनन्द का, पुलकन का भाव अंदर ही अंदर आत्मसात किया जाता है। यह साधना भी शेष एक तिहाई समय में कर ली जाय। इस समय विभाजन में यदि थोड़ा बहुत अंतर भी पड़ता है, तो कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि ध्यान काल में बार-बार घड़ी देखना संभव न होगा। अत: समय विभाजन अनुमान से ही कर लिया करें। जो साधक परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माताजी का हिमालय स्थित बर्फीली चोटी में ध्यान न करना चाहें, वह किस भी अन्य जटाजूट धारी ऋषि का काल्पनिक चित्र हिमालय की बर्फीली चोटी पर स्थापित कर के भी कर सकते हैं। निर्धारित समय का ध्यान अवश्य रखें।

परन्तु परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने अपने साधक शिष्यों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए इस साधना के लिए सम्पूर्ण भारत के लिए सूर्योदय को ध्यान में रखते हुए चार कालखण्डों में विभाजित करते रह सकते हैं।

1. दिसम्बर, जनवरी, फरवरी प्रात: 5.30 से 7.00 बजे तक
2. मार्च, अप्रैल, मई, प्रात: 4.00 बजे से 6.00 बजे तक
3. जून, जुलाई, अगस्त प्रात: 4.30 बजे से 5.30 बजे तक
4. सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर प्रात: 4.30 बजे से 6.00 बजे तक

(वाङ्ममत भाग 6 पृ०सं० 10.23)

प्राण संचार साधना- ऐसे साधक जो शक्ति संचार न कर सकें उनके लिए परम पूज्य गुरुदेव प्राणसंचार साधना को भी समय-समय पर बताते रहे हैं। उसके लिए प्रात: सूर्योदय के एक घण्टापूर्व से लेकर सूर्योदय के एक घण्टे बाद तक का समय निर्धारित किया है। इन दो घण्टों के अन्दर न्यूनतम 15 मिनट तक व अधिकतम 30मिनट का कोई भी समय निर्धारित किया जा सकता है। इसके लिए उत्तर की तरफ अर्थात् हिमालय की तरफ मुँह करके बैठा जाय और

हिमालय की बर्फीली चोटियों में निकलते हुए सूर्य का ध्यान किया जाय। भावना की जाय कि उस सूर्य से बिखर रहे प्राण तत्त्व आप तक पहुँचकर आपके पूरे शरीर, मन, मस्तिष्क, हृदय आदि में प्रवेश कर रहे हैं। यह ध्यान साधना संसार के किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के लोग अपनाकर लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि इस प्रकाश को हिमालय स्थित महान तपस्वी अपनी तप साधना का एक-एक अंश देकर संसार के कल्याण के लिए सम्प्रेषित करते रहते हैं।

आहार- इस साधना में चरण बढ़ाने और अपेक्षति लाभ प्राप्त करने के लिए आहार सम्बन्धी विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। अधिक मात्रा में आहार करने वाले दिन में बार-बार कुछ न कुछ खाते-पीते रहने की प्रवृत्ति के साधकों के लिए यह साधना संभव न होगी। इस सम्बन्ध में प्राचीनकाल के ऋषियों ने तो कठोर नियम बनाए थे। जैन धर्म में इस साधना के लिए साधक को निर्जला या जीवन निर्वाह के लिए न्यूनतम अन्न-जल ग्रहण करने की भी अनिर्वार्यता रखी गयी है। सूर्य की अतापना लेना (सूर्यताप सहन करना) अर्थात् सूर्योपासना द्वारा शक्ति संग्रह करना। तेजोवलय (आंतरिक ऊर्जा) का उद्‌गम केन्द्र कुण्डलिनी ही है। जैन धर्म में प्रचलित तेजोलेश्या को सावित्री साधना का रूप भी माना जा सकता है। इससे शारीरिक ऊर्जा का अंत:ऊष्मा में परिवर्तित कर, कुण्डलिनी को पीड़ित कर जाग्रत किया जाता है। योगमार्ग में इसके लिए कठोर हठयोग की साधनाएँ न्यूनतम आहार के साथ करने का विधान है। परन्तु परम पूज्य गुरुदेव ने इस साधना में अपनी तपश्चर्या का एक अंश अनुदान के रूप में साधकों के लिए सुरक्षित किया हुआ है, जिससे ॐॐॐकार साधक अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से इस पथ पर आगे बढ़ सकते हैं।

परम पूज्य गुरुदेव ने कुण्डलिनी योग की साधना में आहार संबंधी कठोर नियमों में ढील देते हुए आयुर्वेद में वर्णित आहार व्यवस्था जिसमें आधा पेट भोजन करके चौथाई पेट पानी तथा चौथाई पेट वायु के लिए रिक्त रखने की बात कही गयी है, को उचित माना है। शर्त केवल इतनी ही है कि भोजन दिन में मात्र दो बार किया जाय, तीसरी बार खाने चबाने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया जाय। व्यावहारिकता के नाते बाहर जाने पर लोग अतिथि सत्कार के नाम पर प्राय: चाय के साथ मीठा, नमकीन, फल आदि ग्रहण करने का आग्रह करते हैं। ऐसी स्थिति में अच्छा तो यही है कि व्रत की बात कहकर जान बचायी जाय। फिर भी यदि संभव न हो, तो आहार संबंधी सामग्री को मात्र स्पर्श करके लोगों से क्षमा माँग कर चाय या शीतल पेय लेते रहने से भी साधक की साधना में

व्यवधान ही पड़ता है। अतः इस मार्ग के अनुयायी को साधना काल में आहार संबंधी नियम का पालन कठोरता पूर्वक करना चाहिए। इससे संकल्पशक्ति में आशातीत वृद्धि होती है। साधनाकाल तक के लिए तो स्वादेन्द्रिय को नियंत्रित करना ही पड़ता है। स्वादेन्द्रिय के नियंत्रण हो जाने से जननेन्द्रिय की उत्तेजना में कमी हो जाती हे। जिससे धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य सिद्ध हो जाता है।

उपवास :- समसामयिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए परम पूज्य गुरुदेव ने उपवास के ऐसे कठोर नियमों में ढील देते हुए सप्ताह में एक दिन (रविवार या गुरुवार) के उपवास को ही पर्याप्त माना है। यदि सप्ताह में एक दिन भी उपवास संभव न हो, तो गुरुवार या रविवार को अवस्वाद व्रत के साथ एक समय आहार ग्रहण कर भी उपवास का लाभ उठाया जा सकता है। अतः ॐॐॐकार साधकों से अपेक्षा की जाती है कि जो स्वदेन्द्रिय को नियंत्रित करने के लिए अस्वाद व्रत का पालन परिस्थितिवश न कर सकें, उन्हें न्यूनतम गुरुवार तथा रविवार को अस्वाद व्रत का पालन तो अनिवार्य रूप से करना चाहिए। दोनों दिन रविवार एवं गुरुवार को अस्वाद व्रत चला सकें, तो उत्तम होगा।

ब्रह्मचर्यः- इस साधना के दूसरे चरण में प्रवेश करने वाले साधकों को चाहिए कि वे ब्रह्मचर्य पालन में कुछ कठोरता लाएँ, क्योंकि यह चरण विशुद्ध रूप से कुण्डलिनी योग ही है। इस साधना के लिए ऋषियों-महाऋषियों ने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन का निर्देश दे रखा है। सामान्य गृहस्थों के लिए इसे एक प्रकार से वर्जित ही माना जाता रहा है। किन्तु परम पूज्य गुरुदेव ने इस साधना को आम जनता के लिए सर्वसुलभ बना दिया है। इसके लिए ब्रह्मचर्य की पूर्ण कठोरता की जगह क्रमिक रूप से माह में एक बार तथा फिर तीन माह में व छः माह 12 माह में एक बार ब्रह्मचर्य भंग कर पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन में आ जाना चाहिए। ब्रह्मचर्य की शक्ति से धातु का सुषुम्ना में संचरण होता है। वस्तुतः धातु का ऊर्ध्वगमन ही कुण्डलिनी जागरण है। अस्तु, साधकों को चाहिए कि मात्र शारीरिक ब्रह्मचर्य तक ही सीमित न रहें, अपितु मानसिक एवं वाचिक ब्रह्मचर्य का भी पालन करें। इससे कुविचारों, कुत्सित चिंतन पर नियंत्रण करना आसान होगा, जिससे स्वप्न दोष ऐसे अवांछित रूप से होने वाले धातु पतन पर स्वतः रोके लग जाती है। इसके लिए सत्साहित्य का स्वाध्याय, सत्संग एवं चिंतन, मनन से भी पर्याप्त मदद मिलती है। ब्रह्मचर्य के संबंध में परम पूज्य गुरुदेव का मानना है कि कामुक चिन्तन, अश्लील चित्रों, फिल्मों के दृश्य साधक की साधना में बहुत बड़े विघ्न सिद्ध होते हैं। अतः साधक को कुसंगति तथा अवांछनीय चिंतन-मनन से बचकर

रहने पर ही ब्रह्मचर्य का ठीक ढंग से निर्वाह हो पाता है।

साधना में सफलता का परीक्षण

चक्रों के जागरण प्रारंभ मूलाधार चक्र से शुरू होता है। इस जागरण में प्राणायाम का महत्व तो है साथ ही यदि प्राणायाम के साथ ध्यान को भी जोड़ दिया जाय, तो कई वर्षो में पूरी होने वाली चक्रों के जागरण की प्रक्रिया शीघ्र प्रारंभ हो जाती है। बाह्य लक्षणों में ऊष्मा का रीढ़ में चढ़ना, चक्रों के स्थान पर गर्मी अनुभव होना, खुजली होना, रीढ़ के अन्दर सुरसुराहट जैसे प्रारंभिक अनुभूतियों का होना यह सब चक्रों के जागरण के प्रारंभिक लक्षण हैं। प्रारंभ से ही ध्यान की प्रक्रिया ठीक ढंग से चलती रहे तो मूलाधार चक्र के जागरण के समय मल मूत्र छिद्रों के मध्य ऊष्मा बढ़ जाती है। यह स्थान स्वयमेव ऊपर की ओर उठने लगता है, जैसे कि शक्ति चालिनी मुद्रा का अभ्यास करते समय स्वयं के प्रयास से ऊपर खींचना पड़ता है। ध्यान में मूलाधार स्थित नुकीली हड्डियों के मध्य जोड़ के अन्दर में (रीढ़ की हड्डी में पीठ पर) खुजली ऊष्मा चींटीं रेंगने जैसे अनुभव होने लगते हैं। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ता जाता है, ध्यान में इनकी अनुभूतियाँ स्पष्ट होती जाती हैं। चक्रों के जागरण में अपान वायु का ऊर्ध्वगामी होना विशेष महत्त्व रखता है। यदि यह अपान वायु साधक की अनभिज्ञता या मार्गदर्शक की गलती से सुषुम्ना में न चढ़ सकी, तो वह वायु नीचे से ही शरीर के अन्य अंगों में भी प्रवेश कर साधक के लिए कष्टकारक सिद्ध हो सकती है अतः साधकों को मनमानी करने के बजाय गाईड के परामर्शानुसार ही प्राणायाम तथा ध्यान-धारणा का अभ्यास करना चाहिए। जहाँ तक अपने ॐॐॐकार साधकों का प्रश्न है, तो हम सबकी मार्गदर्शक सत्ता संरक्षक स्वयं परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य तथा कुण्डलिनी की अधिष्ठात्री माता भवगती देवी शर्मा हैं। अस्तु, उनके प्रति समर्पण भाव से अपनी साधना करने से किसी भी प्रकार की अनिष्ट की गुंजाइश नहीं है।

समुचित मार्गदर्शन में की गयी साधना के फलस्वरूप स्वाधिष्ठान चक्र में ऊर्जा पहुँचने पर मन में चंचलता, उत्तेजना, स्फूर्ति, क्रोध एवं अहंकार की वृद्धि हो जाती है। मणिपुर में पहुँचने पर आत्मबल की वृद्धि प्रतीत होती है। अनाहत चक्र में पहुँचने पर अंतः दृष्टि जाग्रत होती है, विशुद्धि चक्र में पहुँचने पर आत्मज्ञान उभरता है और साधक सदा सर्वदा आनन्द में डूबा रहना चाहता है। यह सभी लक्षण क्षणिक ही होते हैं। इन्हें अनावश्यक जिस-किसी से कहते बताते नहीं रहना चाहिए, इससे साधनात्मक प्रगति में बाधा उपस्थित हो सकती

है। हाँ, अपनी साधना में सहयोगी, गाईड से अनुभव बताए और मार्गदर्शन प्राप्त किए जा सकते हैं। अस्तु साधक को चाहिए कि शक्ति जागरण के समय आने वाले आवेगों, आवेशों पर नियंत्रण रखे। साथ ही गुरु के प्रति समर्पण भाव से आश्रित हो नित्य साधना में रत रहे, तो कुण्डलिनी जागरण की अनेकानेक उपलब्धियों को प्राप्त कर, इसी जीवन में धन्य हुआ जा सकता है।

पंचम चरण
कुण्डलिनी जागरण की पूर्व तैयारी

कुण्डलिनी एक प्रकार की ऊर्जा शक्ति है। ऊर्जा शक्ति से चलने वाले विभिन्न उपकरण आए दिन हम उपयोग में लाते हैं। भौतिक जीवन में ऊर्जा के मुख्य स्रोत जल, वायु, विद्युत, कोयला तथा पेट्रोलियम हैं। इस भौतिक ऊर्जा के अभाव में आज विश्व का पूरा चक्का ही जाम हो जायेगा। इसी प्रकार शरीर रूपी यंत्र को सुनियोजित तरीके से चलाने के लिए भी एक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। उसे कहते हैं प्राण-ऊर्जा। इस प्राण ऊर्जा के अंश को मस्तिष्कीय विकास में नियोजित कर देने वाले डॉक्टर, इंजीनियर वैज्ञानिक, साहित्यकार, राजनेता आदि बन जाते हैं। यह उस शक्ति का भौतिक उपयोग माना जायेगा। इसके अलावा यदि इसी प्राणशक्ति का नियोजन आत्मिक प्रगति के लिए किया जाय, तो मानव से महामानव, नर से नारायण बनने का चमत्कारिक लाभ इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। इस आध्यात्मिक ऊर्जा का केन्द्र है सहस्रार, इस सहस्रार की सक्रियता ही पूरे शरीर को विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करने को प्रेरित करती है। पूरे शरीर के सूक्ष्म तार इस मस्तिष्क रूपी पावर हाउस से ही सम्बद्ध होते हैं। सामान्य रूप से इस शरीर का नियंत्रणकर्त्ता हृदय को माना गया है पर यह मान्यता अधूरी है। मस्तिष्कीय मृत्यु को ही अब वास्तविक मृत्यु माना जाता है। अत: शरीर का मुख्य केन्द्र भी सहस्रार ही हुआ। सहस्रार को यदि आत्मिक विकास की दृष्टि से विकसित किया जाय तो उससे भौतिक सफलताओं के साथ-साथ आत्मिक सफलताओं के शिखर पर भी चढ़ा जा सकता है। आध्यात्मिक दृष्टि से सहस्रार के जागरण का सबसे सीधा एवं सरल मार्ग कुण्डलिनी जागरण की साधना है।

परम पूज्य आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार ''कुण्डलिनी जागरण का

विधि-विधान उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि साधक का परिपक्व मनोबल। किसी योगाभ्यास की पुस्तकें बाजार में बिकती हैं उन्हें मुट्ठी भर पैसों में खरीदी जा सकता है। जो प्रयोग बताये गये हैं वे भी इतने सरल प्रतीत होते हैं कि उन्हें एक बार दुहरा लेने भर से ही तद्नुसार चलने में सफल हुआ जो सकता है। पर इतने भर से कोई उन कृत्यों में सफल नहीं हो सकता। विधान तो हर कार्य के सरल होते हैं, पर कार्यान्वित कर दिखाने के लिए अपनी मन: स्थिति एवं परिस्थिति भी तद्नुरूप विनिर्मित करनी पड़ती है। यह पूर्व तैयारी ही सफलता या अपयश का पक्ष पूरा करती है। साधना वस्तुत: साधना है। उसके प्रयोग में अपना समूचा व्यक्तित्व साधना मय बनाना पड़ता है और अनुभवी मार्गदर्शन का सहारा भी लेना पड़ता है।''

अध्यात्म विज्ञानियों के पास संकल्पबल के साथ-साथ, साहस, संयम, धैर्य, प्राण, तन्मयता आदि आवश्यक आत्मिक शक्तियों की विशेषता रहती हैं। इन्हीं तत्वों, गुणों की अनिवार्य आवश्यकता कुण्डलिनी जागरण के साधकों को भी होती है। इन तत्वों की कमी के कारण ही साधकगण साधना प्रारम्भ करके बीच में ही कोई न कोई बहाना करके साधना छोड़ बैठते हैं। कुण्डलिनी जागरण की क्रियायोग अर्थात् ॐॐ ॐकार योग साधना सरल और सीधी है। कठिन और असाध्य है तो तंत्रमार्ग के माध्यम से कुण्डलिनी जागरण का अभ्यास। इसीलिए परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने तांत्रिक विधि की साधनाओं को न तो अपने शिष्यों को कराया और ना ही भविष्य में तांत्रिक मार्ग पर चलने की सलाह दी है। कुण्डलिनी जागरण की साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए साधक को एक निश्चित लक्ष्य लेकर चलना पड़ता है। मात्र लक्ष्य ही नहीं एक अनुभवी मार्गदर्शक की भी आवश्यकता पड़ती है। यह मार्ग दर्शक गुरु अथवा वरिष्ठ गुरु भ्राता भी हो सकता है, जिसने पहले कुण्डलिनी जागरण की साधना सफलतापूर्वक पूर्ण कर लिया हो। इस साधना में साधक को पग-पग पर नई अनुभूतियाँ होती हैं। उनकी उपयुक्त व्याख्या करना, मार्ग में आने वाली सम्भावित कठिनाइयों तथा अनुभूतियों के प्रति सचेत करने में वह अनुभवी महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। कभी-कभार सूक्ष्मरूप में भ्रमण कर रही अतृप्त आत्माएँ भी साधक को भ्रमित करने का प्रयास करती हैं। यदि साधक उनके द्वारा भेजी गई जानकारी को ही वास्तविक अनुभूतियाँ मान बैठा, तो उसका मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। कोई-कोई जिद्दी अपनी बातों को मार्गदर्शक,

गाइड से छिपाने का प्रयास करते हैं और गलत अनुभूतियों में ही भ्रमित होकर स्वयं को सिद्ध मान बैठते हैं। जिससे उनकी प्रगति अवरूद्ध हो जाती है। परिणाम स्वरूप वह मार्गदर्शक तथा साधना को ही गलत समझने लगता है।

कुण्डलिनी जागरण के जिज्ञासु साधकों को जिन सम्बलों की आवश्यकता है उनमें प्रमुख रूप से सात अति आवश्यक माने गए हैं। वे निम्न हैं-

१. **संकल्प**- श्रद्धा और विश्वास से परिपूर्ण निश्चय-निर्धारण- कार्यान्वयन को ही संकल्प कहा जाता है। संकल्प वस्तुतः वही पूर्ण होते है, जिनके विषय में उचित अनुचित का, उससे होने वाली लाभ-हानि का लेखा-जोखा लेकर संकल्प लिया गया हो। एक बार लिए गए संकल्प को पूरा करने वाला अन्ततोगत्वा संकल्पनिष्ठ बनता चला जाता है, जिसके बल पर वह साधना क्षेत्र के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलताएँ अर्जित करने लगता है।

२. **साहस**- साहस के अन्तर्गत आत्म-विश्वास, आत्मबल तथा पराक्रम का संयोग रहता है। सामान्य से भौतिक जीवन में सफलता का मूल मंत्र व्यक्ति का साहस, व आत्मबल ही हुआ करता है, तब अध्यात्म क्षेत्र में, जिसमें इस सांसारिक चकाचौंध, मायामोह से ऊपर उठकर सूक्ष्म जगत में प्रवेश कर उसमें खोज, अनुसंधान कर अमूल्य रत्न, राशि हस्तगत करना होता है। उसमें साहस का महत्व तो और ही बढ़ जाता है। उसके अभाव में अध्यात्म जगत में प्रवेश करने की कल्पना करना तक व्यर्थ है।

३. **प्राण**- प्राण एक प्रकार की ऊर्जा शक्ति है जिसे सजीव प्रवाह कहा जाता है। इस प्राण-शक्ति को प्राप्त करने के लिए साधक को प्राणाकर्षण प्राणायाम नियमित रूप से करते रहना चाहिए। प्राण तत्व ही वह चुम्बक रूपी शक्ति है जिसके आकर्षण से सूक्ष्म जगत में व्याप्त विस्तृत प्राणशक्ति प्रवाह साधक की ओर मुड़ता है। मनोयोग पूर्वक किया गया प्राणायाम ही वह अभ्यास है, जिसके बलपर साधक प्राणतत्व से परिपूर्ण होता चला जाता है।

४. **संयम** संयम ही मनुष्य को वह शक्ति प्रदान करता है, जिसके बल पर साधक अनावश्यक आवेश उत्तेजना, प्रलोभन तथा विभिन्न प्रकार के दबावों को अस्वीकार करता है दूसरों के बहकाने फुसलाने तथा लोभ-लालच देने के प्रत्येक प्रयासों को असफल कर साहस के साथ आत्मकल्याण के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है। संयम की शक्ति के बल पर ही आए दिन आने वाले प्रलोभनों से बचना संभव होता है। खान-पान में चटोरेपन की दुष्प्रवृत्तियों के वशीभूत लोग जिस

प्रकार पतन-पराभव के गर्त में गिरते जा रहे हैं। अपने य़ार, दोस्त, रिश्तेदार आए दिन खाने पीने से लेकर लोक व्यवहार के अन्यान्य सामाजिक कुप्रचलनों के जाल-जंजाल में फँसाने का़ प्रलोभन व दबाव देते हैं। इन सबको संयम की संकल्प शक्ति के बल पर ही ठुकराया, झुठलाया जा सकता है। साधकों के समक्ष कभी कभार ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है कि साधक को खाने-पीने के लिए विवश होना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में समझदार व संकल्पनिष्ठ साधक व्रत-उपवास का अथवा दिन में मात्र एक या दो बार ही खाने का झूठा बहाना बनाकर बच सकते हैं। अपनी संकल्प-साधना की रक्षा हेतु यदि झूठ भी बोलना पड़े तो उससे उसे कोई हानि नहीं होती। अपितु साधना में वृद्धि ही होती है। संयम व संकल्प के बल पर यह सब संभव है।

५. **तत्परता** - तत्परता का अभिप्राण लगन-स्फूर्ति और श्रमशीलता का समन्वय है। मात्र साधना ही नहीं अपितु अपने सम्पूर्ण जीवन में जिस भी कार्य को हाथ में लिया जाय, उसको पूर्णता तक पहुंचाने में मनोयोग पूर्वक उसके लिए निर्धारित समय सीमा के अन्तर्गत पूरा करने का प्राण-पण से प्रयास किया जाय। आलस्य और प्रमाद को किसी भी कार्य में विशेष रूप से साधनात्मक कार्यो में बाधक न बनने दिया जाय। श्रमशीलता एवं दृढ़ता को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाया जाय। व्यंग-उपहास की परवाह किए बगैर तत्परतापूर्वक हाथ में लिए कार्य को पूरा किया जाय।

६. **तन्मयता**- तन्मयता का अर्थ है एकाग्रता जिस भी किसी बात पर सोचा-विचारा जा रहा हो उसकी इतनी गहराई में डूबा जाय कि अन्य विषय या विचार बीच में प्रवेश न करने पाएँ। इस सम्बन्ध में अर्जुन का लक्ष्यबेध, पृथ्वीराज चौहान के शब्दबेधी बाण को उदाहरणार्थ माना जा सकता है। एकाग्रता के बल पर ही इन लोगों ने इतनी बड़ी सफलता पाई थी। क्रिकेट के बैट्समेन की एकाग्रता ही उसे महान बल्लेबाज बनाती है। एकाग्रता की जितनी ही अधिक क्षमता साधक अर्जित कर लेजा है उतनी ही शीघ्रता से वह सुषुम्नास्थित चक्रों का बेधन तथा सहस्रार जागरण व कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया पूरी कर सकता है।

७. **धैर्य**- ''धीरज धरै तो लागै पारा'' सन्त तुलसीदास का यह कथन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होता है। साधना क्षेत्र में तो इसकी विशेष ही आवश्यकता है; क्योंकि यहाँ पर जन्म-जन्मान्तर तक एक ही मार्ग पर चलने वाले साधक ही सफलता के शिखर पर आरूढ़ हो पाते हैं। आज बोया कल

काटा का बाल विनोद तो सामान्य सी फसलों पर भी लागू नहीं होता, तब जन्म-जन्मान्तर के कषाय कल्मषों की धुलाई-सफाई में यदि लम्बा समय लगता हो तो भी साधकों को धैर्य पूर्वक अपनी साधना में लगे रहना चाहिए। जिस प्रकार नर्सरी कक्षा से पढ़ते हुए एम.ए., पी.एच.डी., डी.एस.सी. आदि की सर्वोपरि उपाधियाँ उपलब्ध की जाती हैं, उसी प्रकार साधना क्षेत्र में कुछ ज्यादा समय लगाने पर ही कुछ कहने लायक सफलता मिल पाती है। उसी तरह साधना के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए ॐॐ ॐकार की यह कुण्डलिनी जागरण साधना जो अन्य साधनाओं की अपेक्षा सरलतम है जिसे क्रियायोग भी कहा जा सकता है। यह साधना अनवरत रूप से संकल्प एवं साहसपूर्वक पूर्ण संयम के साथ चलाते रहने से अनेकों जन्मों में पूरी होने वाली साधना मात्र इस जन्म में ही संभव है। बस आवश्यकता है तो मात्र इन सप्त नियमों को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाकर दृढ़ प्रतिज्ञा पर आरूढ़ रहना।

विशेष सावधानी-

कुण्डलिनी जागरण की साधना को तलवार की धार पर चलने के समान दुरूह माना गया है। परन्तु परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने इस साधना को जो मात्र योगियों, सन्यासियों तथा ब्रह्मचारियों द्वारा संभव थी आम साधकों के लिए सुलभ बना दिया है। सावधानी मात्र इतनी ही बरतनी है कि सामान्य सी क्रियायोग की साधना को कुण्डलिनी के नाम पर अनेक छद्म वेशधारी बाबा जी भोले-भाले भावुक साधकों का शोषण कर रहे हैं उनसे बचा जाय। यह तथाकथित बाबा जी लोग चलते-फिरते अथवा महीने दो महीने तक अपने साथ शिष्यों को रखकर उनकी कुण्डलिनी जगाने का आश्वासन देते हैं। जिज्ञासु साधक उनके बहकावे में आ जाते हैं। परिणाम स्वरूप समय, श्रम और गाँठ की पूँजी गवाँकर साधक खाली ही रह जाता है।

कुण्डलिनी जगाने के नाम पर यह बाबा जी लोग, ध्यान साधना के नाम पर अपने द्वारा सिद्ध कर लिए प्रेतों को साधक की सुषुम्ना में प्रवेश करा देते हैं। वह प्रेत सुषुम्ना में बीज रूप में अथवा अंकुरण कर रहे चक्रों को कुसमय में ही प्रकाशित कर देते हैं। जिसे देखकर भोला-भाला साधक चक्रों का वास्तविक जागरण मान लेता है। परन्तु यह चकाचौंध उसी प्रकार की होता है जैसे अंकुरित हो रहे बीजों में तीव्र रसायनों का छिड़काव कर उसे छणिकरूप में उर्जित कर देने से वह पौधा बड़ा दिखाई पड़ने लगता है परन्तु तुरन्त ही वह जड़ मूल सहित

सूख कर सदा सर्वदा के लिए विनष्ट हो जाता है। परिणाम स्वरूप जिज्ञासु साधक का साधनात्मक सर्वनाश हो जाता है। ऐसे कुछ पाखण्डी बाबा जी हमारे सुसंस्कारी साधकों को भी अपने मायाजाल में फंसाने का प्रयास कर रहे हैं। उन्होंने धनी परिवार की कुछ महिलाओं एवं युवकों को अपने जाल में फंसा भी लिया हैं। अब वही उनके पालतू चेले अन्य जिज्ञासु साधकों को भी उन बाबा जी को भगवान बनाकर उनके जाल में फंसाते रहते हैं। अतः जिज्ञासु साधकों को सलाह दी जाती है कि वह इधर-उधर भटक कर अपना समय व अर्जित साधना को नष्ट न करें।

काम- साधना क्षेत्र में काम वासना एक बहुत बड़ी बाधा है। ऋषियों का मानना है कि रति कर्म से उतनी क्षति नहीं होती, जितनी कामुक चिन्तन से होती है। प्रायः देखा जाता है कि विवाहित व्यक्ति सामान्य रूप से स्वस्थ एवं निश्चिन्त रहता है जबकि अविवाहित व्यक्ति अस्वस्थ चिन्तन एवं मनोरोगी होता है। उसका एक मात्र कारण उसका कामुक चिंतन ही है। उसी प्रकार पर स्त्री गामी व्यक्ति का भी चिन्तन निष्कृष्ट होने के कारण हमेशा उसकी दृष्टि अश्लीलता ही खोजती रहती है। इसीलिए तत्वदर्शी ऋषियों ने साधना पथ के साधकों के लिए कामुक चिंतन से भी विरत रहने की कड़ी हिदायत दी है। यही विकृत चिंतन मनोवैज्ञानिक ढंग से मन को साधना काल में नाना रूप धारण कर विचलित करता रहता है। इस विकृत चिन्तन से बंचने का उपाय कुसंगति से बचना तथा आध्यात्मिक साहित्य का नित्य प्रति स्वाध्याय है।

क्रोध - क्रोध के सम्बन्ध में श्रीमद् भागवत गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि-

क्रोधाद्धभवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंसाद् बुद्धिनाशो बद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

अर्थात्- क्रोध से भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती है। जिससे बुद्धि भ्रमित होकर नष्ट हो जाती है और बुद्धि के नष्ट होने पर प्राणनाश की स्थिति बन जाती है। क्रोध में व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। उचित अनुचित कुछ भी करने को तत्पर हो जाता है। आज जितनी भी हिंसक घटनाएं होती हैं, वह सभी क्रोध के वशीभूत हुए व्यक्तियों द्वारा ही की जाती हैं। क्रोध को क्रोधाग्नि की संज्ञा दी गयी हैं। क्रोध से जितना प्रतिपक्षी को हानि नहीं होती, उससे कई गुना क्रोध करने वाले के स्वस्थ ऊतकों का नष्ट होना माना गया है। साधना क्षेत्र में तो क्रोध

के कारण साधक की आत्मिक प्रगति रूक ही जाती हैं। इसीलिए ऋषियों ने साधकों के लिए क्रोध न करने का नियम बनाया है। यदि कभी अपरिहार्य कारणों से क्रोध की स्थिति बनती हैं, तो मनोवैज्ञानिक चिन्तन-क्रोध के आवेश में किए गये व्यवहार के दुष्परिणामों का चिंतन तथा शान्त भाव के शुभ परिणामों का चिन्तन मन में लाया जाये और उस स्थान विशेष से दूर हो लिया जाये क्रोध पर नियंत्रण लेने से साधक को नष्ट होने से बचा लेता है। अत: साधक को अपनी दिनचर्या में क्रोध के आने वाले अवसरों से बचने को प्रयत्न भी सम्मिलित कर लेना चाहिए।

लोभ- लोभ के कारण ही आज संसार में आपाधापी का माहौल है थोड़े से लोभ में आजकल लोभ लालच के वशीभूत होकर लोग जघन्य से जघन्य अनैतिक कर्म कर बैठते है, ऐसे अवसर पर साधकों के लिए लोभ के वशीभूत होकर अपना अमूल्य समय व श्रम न गंवाना चाहिए। उन्हें धैर्य के साथ अपने पूर्व जन्मों के प्रारब्धों को भोग करते हुए जीवन निर्वाह के न्यूनतम साधनों से ही सन्तुष्ट रहने का साहस जुटाना चाहिए। आगे आने वाले सतयुत को ध्यान में रखते हुए यह मानकर चलना चाहिए कि आने वाला समय आर्थिक समता का युग होगा। अत: साधकों को पूँजीपति बनने का स्वप्न न देखना चाहिए। यदि साधक इस भाव से साधना कर रहे हों कि वह पूंजीपति बन जायेंगे, तो शायद यह उनके घाटे का सौदा होगा। साधना भी न हों पाएगी और न ही वह पूँजीपति बन सकेंगे। अत: बुद्धिमानी इसी में हैं कि परिश्रम पूर्वक उपार्जन करने के बावजूद भी उपयोग कम से कम करने की नीति अपनानी चाहिए। अत: ॐॐ ॐकार साधकों को कम से कम सुख सुविधाओं में ही सन्तुष्ट रहने की नीति पर चलना चाहिए।

मोह- माया मोह के चक्कर में पड़कर ही धृतराष्ट्र ने नीति का त्याग कर अपने पुत्रों को राजगद्दी देने की योजना का समर्थन किया था और राज-पाट के वास्तविक अधिकारी पाण्डु पुत्रों को उससे वंचित करने की शकुनी की नीति का समर्थन कर, दुर्योधन को प्रोत्साहित किया था। आज भी समाज में जितने भी पारिवारिक विघटन होते हैं, उनमें लोभ-मोह ही मूल कारण होता है। घर परिवार का मुखिया अपने चहेते को ही सब कुछ सौंपना चाहता है और उनसे योग्य अन्य परिवारी जनों को उनके अधिकारों और सुविधाओं से वंचित कर देना चाहता है परिणाम स्वरूप पारिवारिक कलह की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। साधना क्षेत्र में भी पारिवारिक माया मोह के चक्कर में पड़कर अच्छे-अच्छे साधक अपना

बहुमूल्य जन्म व्यर्थ गंवा बैठते हैं। प्राचीन काल में तो ऋषियों ने उच्च स्तरीय साधना के लिए गृह त्याग करने की अनिवार्य व्यवस्था तक कर दी थी, परन्तु परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य एवं वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मा ने उच्च स्तरीय साधना को सामान्य गृहस्थों के लिए भी शुलभ करा दिया है। ॐॐ ॐकार के साधक को घर गृहस्थी में रहते हुए सामान्य सा संयम पूर्ण जीवन जीते हुए निर्धारित अनुशासनों का पालन करते रहने पर भी कुछ कहने लायक सफलता मिल ही जाती है। चक्रवेधन तथा कुण्डलिनी योग की साधना के जिज्ञासुओं को चाहिए कि वह तटस्थ भाव से घर परिवार का उत्तरदायित्व निर्वाह करते हुए इस ॐॐ ॐकार रूपी क्रियायोग की साधना को अपना लें। नियमित रूप से कुछ दिनों तक ध्यान-धारणा, जप एवं प्राणायाम करते रहने से एकाग्रता की साधना सध जाती है और साधना मार्ग में आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

ब्रह्माण्डीय चेतना का ही दूसरा नाम प्रकृति है। इसी को भारतीय शास्त्रकारों ने माया, महामाया नाम से सम्बोधित किया है। इसी शक्ति से सृष्टि के सभी क्रियाकलाप संचालित होते हैं। विज्ञानियों ने इसकी बाह्य परतों की हल्की फुल्की जानकारी अर्जित कर आश्चर्यजनक आविष्कार करने में सफल हुए हैं। जितना जान सके हैं उससे असंख्य गुना ज्ञान विज्ञान प्रकृति के अन्तराल में अभी छिपा पड़ा है। उसे स्थूल बाह्य उपकरणों से खोज पाना असंभव है। उसके लिए तो अपने ही अन्तराल की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परतों का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ेगा। यह तभी संभव है जब कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर अपनी चेतना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म परतों को कुरेद कर उनके माध्यम से प्रकृति में सन्निहित ज्ञान को हस्तगत कर लिया जाये।

सहस्रार का ऊपरी हिस्सा ब्रह्मरन्ध्र है। इसे काया का उत्तरी ध्रुव मानना चाहिए। ब्रह्मण्डीय चेतना का प्रकृति स्वरूपा महामाया का निवास काया के दक्षिण ध्रुव के रूप में मूलाधार में है। यहीं से सम्पूर्ण काया को ऊर्जा प्राप्त होती है। इस ऊर्जा का प्रसारण मेरुदण्ड मार्ग से होता है। अध्यात्म की भाषा में इसे देवयान, महामार्ग, स्वर्गारोहण पथ आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। षट्चक्रों का इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना इन सबका मिलन केन्द्र यही मेरुदण्ड है। कुण्डलिनीरूपी महामाया इसी मार्ग से ऊर्ध्वगमन कर शिव स्वरूप परमब्रह्म से उत्तरी शिरा सहस्त्रार एवं ब्रह्मरंध्र में मिलती है।

आद्य गुरु शंकराचार्य का कुण्डलिनी अनुभव उनकी कृति सौन्दर्य लहरी में निम्न प्रकार वर्णित है। विशेष प्रकार के प्राणायामों के माध्यम से जब प्राणवायु को खींचा एवं बाहर निकाला जाता है तब मेरुदण्ड स्थित इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाडियाँ सम स्वर में प्रवाहित होने लगती हैं। इस स्थिति के आ जाने पर नाभि कन्द में एक प्रकाश का गोला विकसित होने लगता है। उससे प्राणशक्ति विद्युत के रूप में प्राप्त होने लगती है और उससे प्राणशक्ति विद्युत के समान विकरित होने लगती है। जिससे पूरे शरीर की सभी नाड़ियों को यह प्राणशक्ति विद्युत के रूप में प्राप्त होने लगती है। फलतः पूरे शरीर में वह ओजस् के रूप में परिलक्षित होने लगती है। सभी इन्द्रियों में भी यह प्राण-शक्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगती है।

मेरूदण्ड के निचले भाग में मूलाधार चक्र है तथा ऊपर सहस्त्रार ब्रह्मरन्ध्र इन दोनों को जोड़ने वाली सुषुम्ना के मध्य इड़ा और पिंगला के मिलन से सुषुम्ना नामक एक तीसरी धारा बनती है। उसके अन्दर बज्रा और बज्रा के अन्दर चित्रणी नामक सूक्ष्मातिसूक्ष्म नाड़ियां विद्यमान हैं। निरन्तर ध्यान एवं प्राणायाम के द्वारा चित्रणी के अन्दर (ब्रह्मनाड़ी) के दर्शन होते हैं, जो मूलाधार से देवयान मार्ग होकर ब्रह्मरन्ध्र तक तो गहन ध्यान में देखी जा सकती है। इस ब्रह्म नाड़ी की पहुँच ब्रह्माण्ड तक है। महान साधक अपनी ध्यानावस्था में इसी ब्रह्म नाड़ी के माध्यम से ब्रह्माण्ड व्यापी क्रियाकलापों का दर्शन कर पाते हैं। वह ब्राह्मी शक्ति को आवश्यकतानुसार इसी मार्ग से आकर्षित भी कर सकते हैं।

मूलाधारादा ब्रह्मरन्धपर्यन्तं सुषुम्ना सूर्याभा।
तन्मध्ये तटित्कोटिसमा मणालतन्तु सूक्ष्मा
कुण्डलिनी। तत्र तमोनिवृत्ति। तद्दर्शनात्सर्व पापनिवृतिः॥

अर्थात् मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक सूर्य के प्रकाश जैसी सुषुम्ना नाड़ी फैली हुई है। उसी के साथ कमल तन्तु समान सूक्ष्म कुण्डलिनी शक्ति बंधी हुई है। उसी के प्रकाश से अन्धकार दूर होता है और पापों से निवृत्ति होती है।

इस दिव्य प्रकाश की उपलब्धि और अन्धकार की निवृत्ति में योग साधना से बड़ा महत्वपूर्ण सहयोग मिलता है। कहा जा सकता है कि कुण्डलिनी साधना ही वह सुगम और सहज मार्ग है जिसके माध्यम से समष्टिगत प्राण से स्वयं को ऊर्जावान्-प्रकाशवान् बनाया जा सकता है।

ब्रह्म नाड़ी मेरूदण्ड के अन्तिम भाग के समीप एक काले वर्ण के

षट्कोण वाले परमाणु से लिपट कर बँध जाती है, इस परमाणु को कूर्म कह गया है, उसकी आकृति कछुवे जैसी है। इस कूर्म में ही आकर ब्रह्म नाड़ी तीन फेरे लगाकर लिपट गई है। इसलिये यह स्थान ऐसा लगता है, जैसे कुण्डली मारे हुये कोई सर्प हो और उस पर कूर्म अर्थात् कछुआ और उसके ऊपर मूलाधार अर्थात् पृथ्वी टिकी हुई हो।

इस सन्दर्भ में -

सौन्दर्य लहरी के कुछ श्लोकों का उल्लेख नीचे किया जाता है-

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं,
स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदिं मरूतमाकाशमुपरि।
मनो अपि भ्रूमध्ये सकलमति भित्त्वा कुलपथं,
सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि।

- सौन्दर्य लहरी

भावार्थ- तुम मूलाधार में पृथ्वी को, स्वाधिष्ठान में जल का मणिपुर में अग्नि को, अनाहत में वायु को, विशुद्ध में आकश को और आज्ञाचक्र में मन को प्रकाश देती हुई- उस सम्पूर्ण मार्ग को भेदकर सहस्रार कमल में परब्रह्म के साथ बिहार करती हो।

कुण्डलिनी साधना

इस साधना में 1. सिद्धसन, 2. शक्ति चालिनी मुद्रा, 3. लोम, विलोम, सूर्य वेधन प्राणायाम, 4. तीन बीज मंत्रों सहित ॐॐ ॐकार मंत्र का जप, 5. ध्यान में कुण्डलिनी ऊर्जा का मंथन एवं उन्नयन का ध्यान जुड़ा हुआ है।

इस साधना में अच्छी सफलता पाने के लिए साधक को इस पुस्तक के प्रथम चरण को अच्छी तरह पढ़ लेना चाहिए। उसमें बताए गये यम, नियम, प्रत्याहार आदि नियमों को अच्छी तरह अध्ययन कर उन्हें अधिक सावधानीपूर्वक अपने जीवन में उतारना चाहिए। इससे यह कुण्डलिनी साधना बहुत ही सरलता से सध जाएगी और आशानुरूप परिणाम हस्तगत होंगे। आहार-विहार पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। कुण्डलिनी साधना में जल्दी सफलता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक नियम को समयबद्ध तरीके से नियमित रूप से पालन करना चाहिए। तभी शीघ्र सफलता की आशा की जा सकती है।

''कुण्डलिनी जागरण तथा उसकी फलश्रुति के सम्बंध में परम पूज्य पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने सावित्री कुण्डलिनी एवं तंत्र 'वाङ्मय के पृ० 6-4

से 6-7 के मध्य निम्न विचार व्यक्त किए हैं।''

''कुण्डलिनी जागरण उस प्रयत्न का नाम है जिसमें प्राणाग्नि को ऊपर उठाया जाता है। शक्ति केन्द्रों के उन चक्रों को गतिशील किया जाता है, जिनका पैंदा आवश्यक गर्मी के अभाव में ठंडा ही रहता है। हाँडी के नीचे आग न जलाई जाय तो उसमें पड़ी वस्तु न गरम होती है, न पकती है।''

''प्राणग्नि को गरम करने में बहुत कठिनाई नहीं है। ब्रह्मचर्य पालन से उसका अधोगामी गति व क्षरण रूक जाता है। इसके अतिरिक्त निर्धारित प्राणायामों के करने तथा शक्ति चालिनी मुद्रा जैसे प्रयोगों से उसे इतना तीव्र किया जाता है कि वह मेरुदण्ड मार्ग की नली में होती हुई मस्तिष्क के मध्य भाग में अवस्थित सहस्त्रार चक्र को स्पर्श कर सके, ब्रह्मण्डीय चेतना के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सके। तालमेल बैठा सके।

''उर्ध्वगमन प्राणग्नि प्राय: प्रकृति प्रेरणा से नीचे गिरती या अन्य छिद्रों द्वारा बाहर फूटती है। इन्द्रियों के रस ऐसे होते ही हैं, जो सामान्य स्थिति में कामचलाऊ उपयोग से शान्त हो जाते हैं। पर उनके पृष्ठ भाग में जब ऊर्जा उभरती है तो हाँडी में उफान आने जैसे स्थिति बन पड़ती है। सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय के भोगों को अतिवाद की सीमा तक ले जाना चाहती हैं। जिह्वा को रसास्वादन, आँखों को दृश्य कौतूहल, मस्तिष्क में लिप्सा लालसा का उभार आता है। यह संस्थान आतुर हो उठते हैं। असावधानी बरतने पर साधक संग्रहीत क्षमता से ही हाथ धो बैठते हैं और खोखले हो जाते हैं। इसलिए कुण्डलिनी साधक को न केवल ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है वरन मन समेत सभी इन्द्रियों पर नियंत्रण कड़ा करके संयम साधना पड़ता है।''

''कुण्डलिनी जागरण अभ्यास को निरन्तर जारी रखने पर असंयमजन्य उत्तेजनाएँ शान्त हो जाती हैं और प्राणाग्नि नीचे से ऊपर को उठना आरम्भ करती है। ऊर्जा कितनी ऊपर उठी, इसका आभास इससे होता है कि ऊपर इन चक्रों के स्थान पर बार-बार अनायास ही स्पन्दन, फड़कन, गर्मी, खुजली जैसी मचती है। कभी-कभी चींटी काटने, कीड़ें, रेंगने, जैसे अनुभव होते हैं। यह हलचलें जिस क्षेत्र में होती हैं वहाँ तक प्राणाग्नि का उर्ध्वगमन हुआ माना जा सकता है।''

''इसी प्रकार ऊपर के चक्रों की दिशा में प्राणाग्नि का बढ़ना स्वभाव में तरह-तरह की उत्तेजनाएँ भरता है। इनमें से कुछ सात्विक भी हो सकती हैं कुछ राजसिक और तामसिक भी। लगता है कई प्रकार के आवेश आते हैं और

उतावली अपनाने के लिए बेचैन करते हैं। इन सभी को अधिक दृढ़तापूर्वक संयमित करना पड़ता है। न कर पाने पर उत्तेजना कार्यान्वित होने लगती है और साधक के किये हुए प्रयासों को निष्फल बना देती है। अस्तु इस मार्ग को अपनाने पर साधना की पूर्णता तक क्रमशः अधिक कठोर संयम बरतने की आवश्यकता पड़ती है। धीर, वीर, गंभीर की तरह फूँक, फूँक कर कदम बढ़ाना पड़ता है और ध्यान रखना पड़ता है कि यह नशे जैसे आवेश में कुछ ऐसा न कर बैठे, जिसे उद्धत कहा जा सके।''

''कुण्डलिनी जाग्रत होकर मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्ना मार्ग से होकर इड़ा पिंगला की सहायता से ऊपर की ओर प्रवाहित होकर षट्चक्रों को प्रज्वलित एवं प्राणयुक्त करती हुई अन्त में सहस्रार में जाकर योगी को पूर्णावस्था की प्राप्ति करा देती है।''

''सहस्रार के जाग्रत होते ही शरीर और आत्मा अपनी स्वतंत्र स्थिति को प्राप्त होती है। आत्मा शरीर से बाहर निकलकर मन चाहे स्थान पर जाकर एवं लौटकर पुनः उसी देह में प्रवेश कर सकती है। यौगिक क्रियाओं द्वारा कुण्डलिनी जाग्रत कर षट्चक्र रूपी द्वारों को खोलते हुए मस्तिष्क में स्थित सहस्रार चक्र में उसे ले जाना ही योग की सिद्धि व सफलता है।

''कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होकर देहस्थ कफ पित्तादि एवं त्याज्य पदार्थों को नष्ट कर डालती है। उसके उर्ध्वमान करते ही देह के तमाम व्यापार बंद हो जाते हैं। हृदय तथा नाड़ी की गति बंद हो जाती हैं। कुण्डलिनी के सहस्रार में प्रवेश करते ही योगी मोक्ष प्राप्त करता है। चक्रों का प्रकाश कुण्डलिनी जाग्रति का द्योतक है। कुण्डलिनी का उर्ध्वमन यही है।''

''कुण्डलिनी प्राणाग्नि है, जिसे प्राणकुण्ड जननेन्द्रिय मूल में प्रसुप्त चिनगारी की तरह जब प्रज्ज्वलित किया जाता है तो छः लोकों को वेधती हुई वह सातवें ब्रह्म लोक में पहुँच जाती है। वहाँ उसका स्वरूप ब्रह्माग्नि का हो जाता है। प्राणाग्नि शरीरगत और मनोगत विशिष्टताओं को उभारती है और सोमवर्षा करती है। देवता और ऋषि इसी सोम का पान करते हैं। ब्रह्मर्षि गण परमात्मा में आत्मा को हवन करके जीवन और ब्रह्म के मध्य अद्वैत स्थिति एकत्व स्थापित कर देते हैं।''

कुण्डलिनी जागरण की साधना में उपयोगी आसन-

१. **सिद्धासन-** इस साधना के लिए केवल इच्छा या आकांक्षा से काम

नही चलता, बल्कि उसके लिए उपयुक्त मूल्य चुकाने का साहस भी चाहिए। जो इस आसन से सहज सिद्ध हो जाता है।

विधि- इस आसन के लिए सामान्य रूप से पालथी मारकर कमर सीधी करके बैठें। बायें पैर की एड़ी को नीचे इस प्रकार रखें कि अण्डकोशों और मलद्वार के मध्य जो नलिका है, उस पर दबाव पड़े। दाहिने पैर को उसके ऊपर इस प्रकार रखें कि पेशाब नली का मूल दोनों एड़ियों के बीच दब जाय। इस प्रकार दोनों एड़ियों के बीच में पेडू तथा मूत्रेन्द्रिय संस्थान आ जाता है। कमर व गर्दन सीधी रखें। हाथ सुविधानुसार गोदी या घुटने में कहीं भी रख सकते हैं।

२. **शक्तिचालिनी मुद्रा-** कुण्डलिनी जागरण की साधना में शक्ति चालिनी मुद्रा की क्रिया अनिवार्य मानी गयी है। इसके लिए सिद्धासन में बैठकर गुदा को ऊपर चढ़ाएँ और जितनी देर आसानी से रोक सकते हैं, रोकें। फिर धीरे-धीरे उसे ढीला कर दें। पुनः ऊपर खींचे और रोक कर पहले की तरह ढीला कर दें। इस प्रकार इस प्रक्रिया को बार-बार करना पड़ता है। इसके लिए सुबह या शाम का समय ज्यादा उपयुक्त होता है। इस क्रिया में मल-मूत्र त्याग की इच्छा होने पर भी जब उसे मजबूरी वश रोकना पड़ता है, उसी प्रकार गुदा को ऊपर खींचने और फिर ढीला करने की क्रिया करनी होती है। कुछ दिनों बाद बिना सिद्धासन में यह क्रिया सामान्य रूप से सीधे बैठकर भी की जा सकती है। इस क्रिया के साथ भावनापूर्वक ध्यान किया जाय कि कुण्डलिनी प्रदेश में खूब हलचल हो रही है। जिससे ऊर्जा पैदा होकर ऊपर की ओर चढ़ रही है।

अनुलोम-विलोम सूर्य वेधी प्राणायाम- इस प्राणायाम के लिए सिद्धासन पर बैठना उपयुक्त होता है, किन्तु यदि साधक को इस आसन पर बैठकर प्राणायाम करने में असुविधा हो तो बाएँ पैर की एड़ी से मल-मूत्र छिद्रों के बीच वाली नलिका को अच्छी तरह दबाकर दाहिना पैर सीधे फैलाकर भी बैठा जा सकता है। ज्यादा समय तक प्राणायाम करने पर यदि बायाँ पैर दर्द करने लगे, तो उसकी जगह दाहिने पैर की एड़ी लगाकर बाएँ पैर को सीधे आगे की तरफ फैला देना चाहिए।

अब दाईं नासिका को बाएँ हाथ के अनामिका उंगली से दबाकर बाएँ नाक से प्राण वायु खींचें। वायु खींचते समय मानसिक रूप से गिनती गिनते रहा जाय, जितनी देर तक वायु खींचने में लगाया गया है, उसका आधा समय उसे रोकने में (अंतः कुम्भक में) लगाएँ। पुनः बाएँ नाक से वायु को बाहर निकालने

में उतना ही समय लगाएँ, जितना की वायु खींचने में समय लगा था और वायु बाहर निकाल देने के बाद उतनी देर तक बाह्य कुंभक करें, जितनी देर तक अंत: कुम्भक किया गया था। इसे 4:2, 4:2 का समय कहा जाता है। दुबारा दाएँ नाक से वायु खींचे और उसी प्रकार रोकें। तथा दूसरी नाक से निकालें और खाली पेट रहें। इसमें भी 4:2, 4:2 का अनुपात रखा जाता है। इस प्रकार यह एक प्राणायाम माना जायेगा। इस प्राणायाम के करते समय मूलबंध, उड्डयन बंध तथा जालंधर बंध भी लगाया जाय। तीनों बंध एक साथ लगाने पर महाबंध बन जाता है।

ध्यान- इस प्राणायाम के करते समय ध्यान किया जाय कि मेरूदण्ड एक पोले प्रकाशवान पाइप के समान है। जिसके अंदर तीन पतले-पतले अन्य पाइप पड़े हैं। इनमें बायीं वाले पाइप (नली) को इड़ा, दाहिनी वाले पाइप (नली) को पिंगला तथा इन दोनों के बीच वाले पाइप को सुषुम्ना मान लिया जाय। वायु खींचते समय जिस तरफ की नाक से श्वांस खींची जाती है, उसी तरफ की नली में प्रवेश करते और दूसरी तरफ की नली से निकलते हुए देखने का प्रयास किया जाय, वायु को मूलाधार तक जाते और वहाँ पर मूलाधार में वायु को भँवर चक्र बनाते अनुभव करें। उदाहरणार्थ यदि बायीं नाक से वायु खींची जाय तो इड़ा नाड़ी में प्रवेश होने पर मूलाधार में वायु का भँवर चक्र अनुभव करें और फिर पिंगला नाड़ी से वायु बाहर निकाल दें। दूसरी बार पिंगला नाड़ी में (दाहिनी नाक से वायु खींचकर) प्रवेश करते हुए देखें। जब निकालना हो तो बाई नाक से अर्थात् इड़ा नाड़ी से बाहर निकालें। जितनी देर तक प्राणायाम करना है, इसी प्रकार करते रहें। प्राणायाम समाप्त करते समय अंतिम बार दोनों नासिका से उसी प्रकार धीरे-धीरे वायु खींचे और ध्यान करें कि वायु बीच की नली सुषुम्ना में प्रवेश कर रही है। उसी अनुपात में रोकें और दोनों नाक से धीर-धीरे निकालें। निकालते समय सुषुम्ना से वायु को बाहर निकलते देखने की भावना करें।

यह प्राणायाम पाँच की संख्या से प्रारंभ कर एक-एक की संख्या में रोजाना बढ़ाकर कम से कम आधा घंटे तक करें। यह प्राणायाम प्रात: काल ही किया जाय, यदि शाम को करना हो तो दिन डूबने के बाद वातावरण ठंढा हो जाने पर किया जाय। प्रात: शाम दोनों समय जो लोग यह प्राणायाम करना चाहें वह तीन चौथाई मात्रा प्रात: तथा शेष एक चौथाई मात्रा शाम को प्राणायाम करें। जो आधा घंटे से ज्यादा प्राणायाम करना चाहते हैं, उन्हें गर्मियों में प्राणायाम की

मात्रा घटा देनी चाहिए। अन्यथा शरीर में ऊष्मा अधिक बढ़ जाने से साधना में विघ्न पड़ता है। यह प्राणायाम एक-एक करके बढ़ाया और एक-एक करके ही घटाया जाता है।

जप- कुण्डलिनी साधना में ॐॐ ॐकार मंत्र के जप के साथ तीनों बीज मंत्र ॐॐ ॐकार मंत्र के बाद जोड़कर जप करना होता है। इसके लिए पूरा मंत्र इस प्रकार होगा। ॐॐ ॐकार ह्री, सीं, क्लीं ॐॐ ॐकार इतना पूरा एक मंत्र माना जाता है। इस पूरे मंत्र की न्यूनतम तीन माला जप करना चाहिए। ज्यादा संख्या में मंत्र जप करने की स्थिति में बिना बीज मंत्र के भी केवल ॐॐ ॐकार मंत्र का जप किया जा सकता है। इस साधना में मंत्र शक्ति से मूलाधार में छिपी महाशक्ति सुषुम्ना मार्ग से प्रकाश तरंगे के रूप में ऊपर उठती है जिससे कुण्डलिनी जाग्रत होती है।

कुण्डलिनी जागरण संबंधी ध्यान-

इस ध्यान के लिए सिद्धासन में बैठे। सिद्धासन में पूरे ध्यानकाल तक जिसके लिए आसानी से बैठना संभव न हो, वे लोग सहज रूप से कमर व गर्दन सीधी करके बैठे। मन को आज्ञा चक्र से प्रवेश कराकर त्रिकुटी होकर सहस्त्रार में ले जाएँ। सहस्त्रार में परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दीनया माताजी को बैठा देखें और उनके चरणों से मानसिक रूप से अपना माथा टेकें (प्रणाम करें)। फिर वापस लौटकर उसी मार्ग से त्रिकुटी व आज्ञाचक्र तक आएँ। आज्ञाचक्र से मन को पुनः पीछे त्रिकुटी तक ले जाएँ। त्रिकुटी सहस्त्रार के ठीक नीचे और आज्ञाचक्र से पीछे सीध में थोड़ा सा ऊपर है। त्रिकुटी के सीध में नीचे से ही संकल्प बल से मन को विशुद्धि चक्र में ले जाएँ। विशुद्धि चक्र से संकल्प बल से मन को हृदय चक्र, नाभिचक्र, स्वाधिष्ठान चक्र होते हुए मूलाधार चक्र तक पहुँचें।

मूलाधार में मन पहुँच जाने पर ध्यान करें कि मूलाधार में हलचल हो रही प्रकाश की किरणें पुँज के रूप में पड़ रही है, जिससे मूलाधार में हलचल हो रही है। इसके साथ ही साथ गुदाद्वार को ऊपर की तरफ खींचा जाय और फिर ढ़ीला किया जाय। जैसे शक्ति चालिनी मुद्रा में किया जाता है। ध्यान किया जाय कि मेरुदण्ड के अन्दर नीचे मूलाधार का मंथन होता है। उससे ऊर्जा उत्पन्न होती है और वह प्रकाश की तरंग के रूप में मेरुदण्ड मार्ग से ऊपर को गमन करती

हैं। इससे पूरा मेरुदण्ड मार्ग प्रकाशित होता है। अपने अन्दर प्रकाश पुंज का विस्तार हो रहा है। यह प्रकाश सहस्त्रार तक पहुँचता है। इस प्रकार मूलाधार एवं सस्त्रार एकाकार हो उठते है। नीचे से ऊपर तक प्रकाश की तरंगे फैलकर पूरे शरीर को आलोकमय बना देती हैं।

जब साधना समापन करना हो तो पुनः मन को मूलाधार से स्वाधिष्ठान चक्र होकर क्रमशः ऊपर के चक्रों में चढ़ते हुए सहस्त्रार तक ले जाएं। जिस मार्ग से मन नीचे उतारा गया था। उसे उल्टे क्रम में नीचे से ऊपर ले जाकर सहस्त्रार स्थित परम पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माताजी के चरणों में प्रणाम कर पाँच बार ॐॐ ॐकार ध्वनि (धीमी गति में) करके समाप्त करें।

समर्पण योग की भाव साधना -

प्रायः सभी साधकों का एक ही लक्ष्य होता है, वह है ईश्वर की प्राप्ति। इसी को दूसरे शब्दों में जीवन-मुक्ति, आदि नामों से भी जाना जाता है। वेदान्त दर्शन की भाषा में इसको अद्वैत की स्थिति माना जाता है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए अपनी निजी आकांक्षाओं का त्याग करना पड़ता है। ईश्वर की इच्छा, आकांक्षा को ही सर्वोपरि मानना पड़ता है। इस स्थिति में वासना, तृष्णा और अहन्ता में से एक के लिए भी आकुलता, व्याकुलता नहीं रह जाती। संकीर्ण स्वार्थपरता का स्थान उदारता, परमार्थ परायणता ले लेती है। इस स्थिति में साधक का भगवान् में विलय, विसर्जन, समापन कहा जाता है। तभी भक्त का भगवान् के प्रति वास्तविक समर्पण माना जाता है।

इस संबंध में एक घटना का उल्लेख कर रहे हैं, जिससे साधक अच्छी प्रेरणा ले सकते हैं- स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनपढ़ शिष्य लाटू महाराज, जिन्हें सांसारिक व्यवहार कुशलता की दृष्टि से भी मूर्ख माना जाता था, अपनी गुरुभक्ति के बल पर साधना में स्वामी विवेकानन्द के समीप तक पहुँच जाया करते थे। उनकी जीवनी लेखक ने उनके बताए अनुसार लिखा है- 'मैं साधना में लोरेन भाई (स्वामी विवेकानन्द को लाटू महाराज इसी नाम से पुकारते थे) को पकड़ने की कोशिश करता, किन्तु लोरेन भाई भी तो रूकने वाले कहाँ थे। मैं जैसे ही उनके पास पहुँचता कि वह मुझसे फिर आगे निकल जाते।' साधना के इतिहास में इस प्रकार का प्रयत्न शायद ही किसी ने किया हो। किन्तु गुरु के प्रति समर्पण भाव रखने के कारण सांसारिक, बौद्धिक ज्ञान की दृष्टि से मूर्ख

लाटू महाराज, जिन्हें बाद में अद्भुतानन्द नाम से सम्बोधित किया गया, ने ऐसा अद्भुत प्रयत्न कर दिखाया। लाटू महाराज का ठाकुर रामकृष्ण परमहंस के प्रति समर्पण भाव इतना ऊंचा था कि वह परमहंस जी के बिना एक दो दिन बाहर नहीं रह सकते थे। एक बार ठाकुर अपने गांव कामार पुकुर गए हुए थे। उनके अभाव में वह गंगा तट पर विकल भाव से बैठे हुए थे। फिर उन्होंने देखा कि ठाकुर उनके पास आ गए हैं वह उसी दृश्य में डूब गए ध्यान भंग होने पर वह परेशान होकर उन्हें चारों तरफ खोजते रहे जब लोगों ने बताया कि वह तो बाहर हैं। इस पर लाटू महाराज विश्वास ही नहीं कर पा रहे थे क्योंकि वह देखते थे कि ठाकुर तो सर्वदा उसके ही इर्द गिर्द रहा करते हैं। यह लाटू महाराज का परमहंस जी के प्रति समर्पण भाव ही था जिससे कि ठाकुर उसे अपनी छत्र छाया में ही रखते थे।

भगवान का कोई भी आकार क्यों न बनाया या माना जाय सभी अपूर्ण ही होंगे। यदि भगवान् का सही स्वरूप समझना व माना है, तो वह प्रकाश रूप ही माना जा सकता है। इसी कारण परम पूज्य आचार्यश्री ने ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप सविता के रूप में ही माना है। सविता मात्र प्रकाश ही नहीं देता, उसकी रश्मियाँ अनेकानेक गुणों से सम्पन्न हैं। तभी तो सम्पूर्ण पृथ्वी व उसके अन्यान्य ग्रह नक्षत्र उससे शक्ति प्राप्त कर निरन्तर गतिशील हैं। साधक भी सविता के जिन गुणों को जितने अंशों में धारण करता जाता है। उतने ही अंशों में वह भगवान् के समीप पहुँचता चला जाता है साधना क्षेत्र के साधक सविता स्वरूप भगवान् से ओजस् तेजस् तथा वर्चस् रूपी गुणों को धारण करता चला जाता है। इन गुणों को अधिकाधिक धारण करना साधक का मूल उद्देश्य होता है। इसके लिए समर्पण योग की साधना करनी पड़ती है। इस साधना के लिए प्रातः काल सूर्योदय के एक घण्टे पूर्व से लेकर एक घण्टे पश्चात् तक का समय सर्वश्रेष्ठ माना गया है। यदि सायंकाल यह साधना करनी हो तो सूर्यास्त से तीन घण्टे तक का समय ही उपयुक्त होगा। यह साधना एक निश्चित समय पर 15 मिनट से प्रारंभ करके एक घंटे तक की जा सकती है। इसकी साधना विधि निम्न प्रकार है-

साधना- पूर्व की दिशा में मुँह करके बैठा जाय। यदि किसी साधक की साधना स्थली में पूर्व की दिशा में मुँह करने की सुविधा न हो, और वह अन्य दिशा की तरफ मुँह करके बैठा है, तब भी वह ऐसी भावना करके साधना सम्पन्न कर सकता है। कि वह पूर्व मुँह करके बैठा है इस साधना के तीन चरण है-

1. भावना करें कि हमारा मुँह पूर्व दिशा की ओर है। हमारे सामने प्रातःकालीन स्वर्णिम सूर्य उदित हो रहा है। इस सूर्य (सविता) का तेज जो ब्रह्म स्वरूप है, स्वर्णिम आभा के रूप में सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो रहा है, फैल रहा है। हम उसी प्रकाश रूपी स्वर्णिम आभा के मध्य बैठे हैं। अपने को इस स्वर्णिम प्रकाश से ओत-प्रोत मानने की भावना करें।
2. इस स्वर्णिम आभा में अपने ईष्ट देव को भी व्याप्त माने। ॐॐ ॐकार साधक स्वर्णिम सविता की रश्मियों में परम पूज्य गुरुदेव के सूक्ष्म स्वरूप की भावना करें तो ज्यादा उपयुक्त होगा। अन्यथा प्रकाश की इन रश्मियों से ओत-प्रोत होने की भावना करें। ध्यान करें कि हमारा इष्ट हमारे कल्याण के लिए दिव्य ऊर्जा, ब्रह्मशक्ति तथा ब्रह्मवर्चस् का विस्तार कर हमें उससे ओत-प्रोत कर रहा है। अपना किरण रूपी दिव्य बाहों से हमें गोदी में उठा रहा है और हम उसकी प्रकाश रूपी गोद में खूब प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं।
3. अब ध्यान करें कि आपकी आत्म-चेतना अपने इष्ट की किरण रूपी बाहों में उछल कर पहुँचने को आतुर है। जैसे दीपक की लौ के लिए पतंगा लपकता हे। उसके साथ अपनी आहुति देने को आतुर होता है। अथवा पुष्पों से निकलती गंध वायु में मिलने को आकुल-व्याकुल रहती है। इसी प्रकार आप भी अपने इष्ट के साथ रश्मियों में मिलकर एकाकार होने की भावना करें। जिस प्रकार जल की बूँदे समुद्र में मिलकर एकाकार हो जाती हैं।

निराकार-साकार (ज्ञानमार्ग-भक्तिमार्ग)

अदृश्य जीवन, परमात्म-चेतना के साथ सम्बन्ध बनाने और बढ़ाने के लिए जिस मनोवैज्ञानिक ढाँचे को खड़ा करना पड़ता है उसके लिए भी वह अलंकारिक प्रतिष्ठापन बहुत काम आती है। साकार सगुण-ईश्वर का सृजन इसीलिए हुआ है। उमा-महेश, राम-सीता, आदम-हव्वा आदि की मान्यताएँ इसी आधार पर हैं। विश्वास की परिपक्कता में आध्यात्मिक प्रयोजन में उस प्रकार की साकार मान्यताएँ अनिवार्य रूप से आवश्यक होती है। ईश्वर को व्यक्ति माने बिना हमारी अन्त:चेतना उससे भावनात्मक सम्बन्ध न तो बना सकती है और न बढ़ा सकती है। मानवीय चेतना का निर्माण ही इस ढंग से हुआ है कि उसका घनिष्ठ भाव-सम्बन्ध दृश्य पदार्थो से भी संभव हो सके।

''हवा, सर्दी, गर्मी, बिजली ईथर आदि के अस्तित्व और बल से हम

भली प्रकार परिचित हैं, पर हम उन्हें प्यार नहीं कर सकते-उनके साथ भावनात्मक सम्पर्क नहीं बना सकते। इस स्तर पर सम्पर्क बने बिना भाव संचार का उपासनात्मक प्रयोजन पूरा नहीं हो सकता। और आत्मा को परमात्मा से मिलाने वाला संचार साधन बन ही नहीं पाता। ज्ञान से इतना भर समझा-समझाया जा सकता है कि ईश्वर है और उसका विधान-कर्तृत्त्व यह है। उससे प्रेम करने की भाव साधना निराकार के साथ सम्भव है ही नहीं। इसीलिए आत्मविद्या को दो भागों में बाँटा गया है एक ज्ञानयोग जिसमें वस्तुस्थिति को समझना भर सीमित है। दूसरा भक्तियोग जिसमें भावनात्मक उभार आवेश का चुम्बकत्व पैदा करके उस परब्रह्म का जीवब्रह्म के साथ सघनता स्थापित करना सम्भव होता है।''

''निराकार और साकार क्षेत्र यही है। निर्गुण और सगुण का सारा ढाँचा इन्हीं दो आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खड़ा किया गया है। सो इन दोनों को अलग-अलग विज्ञान की धारा नहीं मानना चाहिए। वरन् ऋण और धन विद्युत की तरह परा और अपरा प्रकृति की तरह समझने-समझाने पर विभिन्न परिस्थितियों में उनके विभिन्न प्रयोजन के लिए ही यह उभयपक्षी विवेचन है। वस्तुत: सब कुछ दोनों का मिला-जुला ही है। एकाकीपन यहाँ कहीं भी नहीं है।''

वाङ्मय-सावित्री कुण्डलिनी एवं तंत्र (पृष्ठ- 5.62)

नोट :- यहाँ परम पूज्य गुरुदेव ने स्पष्ट कर दिया है कि ज्ञान का मार्ग अर्थात् निराकार उपासना अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाती ही नहीं है, बल्कि परमात्मा की ओर जाने वाले मार्ग का संकेत मात्र करती है। वेदांत मार्ग के स्त्रोत वेद तथा उपनिषद भी ज्ञान मात्र ही देते है। इसीलिए आधुनिक युग के महानतम वेदांती स्वामी विवेकानंद जब 1999 में कश्मीर के क्षीरभवानी मंदिर के दर्शन किये तो वहाँ पर माँ काली की प्रत्यक्ष अनुभूति से इतने अविभूत हुए कि अपना होशो हवास तक खो बैठे। और आठ दिनों तक एकांत में रहकर माँ के साकार रूप में ही ध्यानमग्न रहे उसके उपरांत उन्होंने कहा था कि ''मैं सिखानेवाला कौन होता हूँ? सबको माँ ही सिखलायेंगी।'' अत: साधकों को परमात्म-प्राप्ति के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भक्ति मार्ग अर्थात् साकार उपासना का ही सहारा लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ज्ञान मार्ग दूसरों को उपदेश देने के लिए और स्वयं के लिए तो भक्तिमार्ग ही है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर दें कि भक्ति मार्ग केवल साकार उपासना को ही कहा जाता है जब कि निराकार उपासना को ज्ञान मार्ग माना गया

है। उदाहरणार्थ निराकार प्रकाश के ध्यान को ज्ञानमार्ग तथा प्रकाश के स्रोत तथा सूर्य, चन्द्रमा, दीपक आदि यह सभी प्रकाश के स्रोत हैं। इनके आकार का ध्यान साकार उपासना या भक्तिमार्ग माना जायेगा। इन लक्ष्यों पर ध्यान अच्छी तरह लग जाने पर अपने इष्ट अथवा गुरु के साकार स्वरूप का ध्यान एवं उनके साथ प्रगाढ़ प्रेम संबंध बनाने की साधना सम्भव हो पाती है, यही भक्तिमार्ग है।

योगमार्ग (क्रियायोग)

"योग के द्वारा चेतना के विकास से अपनी मनः स्थिति को बदल कर स्नायु संस्थान पर नियंत्रण किया जा सकता है। योगाभ्यास, मुद्रा, बन्ध, प्राणायामादि का प्रत्यक्ष प्रभाव अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों और स्नायु संस्थान पर पड़ता है। व्यक्तिगत चेतना इससे विकसित होती है, परिष्कृत चेतना अपने प्रति स्वयं सजग होने लगती है। चेतना का यह परिवर्तन, परिष्कार प्रार्थना, जपादि अन्य अभ्यासों से भी शनैः शनैः होता है परन्तु कुण्डलिनी योग का श्रद्धापूर्वक अभ्यास उसमें शीघ्रता ला देता है। ध्यान की उच्चतम स्थिति मन के अतिक्रमण की अवस्था में पहुँचने के लिए मन पर नियन्त्रण करना इस प्रकार सुगम हो जाता है।"

"कुण्डलिनी योग-शरीर चेतना के विभिन्न केन्द्रों को जगाकर मन की शक्तियों के जागरण की प्रक्रिया है। चेतना के विभिन्न केन्द्र मेरूदण्ड में अवस्थित शक्ति भंवर (चक्र) कहलाते हैं। एक-एक चक्र की शक्तियाँ जाग्रत होते जाने से चेतन-स्थिति में परिवर्तन उन्नयन होता जाता है।"

नोट:- परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने अपने मथुरा निवास काल में समय-समय पर साधकों को कुण्डलिनी योग की साधना का योगाभ्यास तथा नाड़ी-शोधन प्राणायाम, प्राणाकर्षण तथा लोम विलोम आदि प्राणायामों तथा अन्य समयानुकूल योगाभ्यासों का अभ्यास कराया था। शांतिकुंज में भी सन् 1978 से 1980 इसवी तक पूज्य गुरुदेव ने नित्य सायंकाल कुण्डलिनी जागरण, तीनों शरीरों के जागरण की साधना तथा पंचकोशी साधना में से किसी न किसी एक को प्रतिदिन शांतिकुंज में निवास करने वाले अपने कार्यकर्त्ताओं तथा शिविरों में आनेवाले साधकों को कराया करते थे। परम पूज्य गुरुदेव ने 1964 के अक्टूबर माह की अखण्ड ज्योति पत्रिका में इस साधना के विषय में छापा भी था। अतः गायत्री परिवार के साधकों को योगाभ्यास के माध्यम से मेरूदण्ड में अवस्थित विभिन्न चेतना केन्द्रों को जागृत कर आत्मोप्लब्धि प्राप्ति को प्रयास करना चाहिए।

सुषुम्ना में चक्रोकी स्थिति

1. सहस्रार
2. त्रिकुटी
3. आज्ञाचक्र
4. विशुद्धि चक्र
5. हृदय चक्र
6. नाभि चक्र
7. स्वाधिवठान चक्र
8. मूलधार चक्र
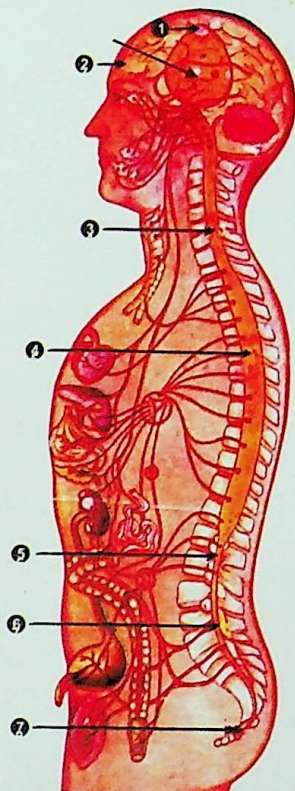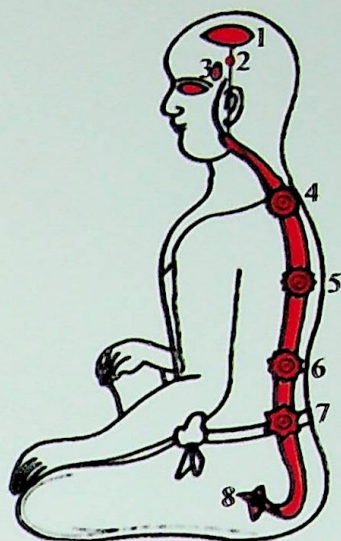
प्रथम संस्करण : 2000

लेखक एवं संकलनकर्ता :

एक अनुभवी ॐ ॐ ॐकार साधक

लागत मूल्य : 16/- रु.

-: प्रकाशक :-

गायत्री ट्रेवल्स

हरिद्वार ऋषिकेश रोड़

शांतिकुंज गेट नं. 2 के सामने, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

मोबा. : 09720106019, 09720106049, 07417785699